हिन्दी गद्य-भारती

H84
C55H

सम्पादक :
वलगा रामकोटय्या चौधरी एम. ए.

OS,

हिन्दी गद्य-भारती

संपादक

वेलगा रामकोटय्या चौधरी, एम. ए.
हिन्दी प्राध्यापक,
लयोला कालेज, मद्रास-३४

सर्वाधि ार स्वरक्षित]

[दाम : २-०

प्रस्तावना

'हिन्दी गद्य-भारती' पाठकों के हाथों में प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इसमें मैंने हिन्दी के ख्यातनामा लेखकों की सुन्दर रचनाओं का संकलन किया है। विश्व-विद्यालय तथा अन्यान्य हिन्दी संस्थाओं के पाठ्यक्रम को दृष्टि में रखकर यह संकलन प्रस्तुत किया गया है। संस्कृति, कला, यात्रा-वृत्तांत, विचारात्मक इत्यादि पर रचे गये निबधों के साथ सरस एवं सुबोध शैली में विरचित कहानी और एकांकी का भी इसमें समावेश किया गया है इस प्रकार मैंने इसे प्रतिनिधि गद्य-संग्रह बनाने का पूर्ण यत्न किया है। साथ ही शब्दार्थ देकर संग्रह को और भी सरल बनाने का प्रयत्न किया है। आशा है, विश्व-विद्यालय तथा अन्य संस्थाओं के अधिकार इसे अपने पाठ्यक्रम में स्थान देकर मुझे प्रोत्साहित करेंगे

—सम्पादक

विषय-सूची

वंशदीप उर्फ़ घोड़े हँसते हैं

अमृत राय

[श्री अमृत राय प्रेमचन्दजी की संपत्ति के ही वारिस नहीं अपितु उनके साहित्य के भी उत्तराधिकारी सिद्ध हुए हैं। आप एक ही साथ कहानीकार, उपन्यासकार, संपादक एवं समीक्षक भी हैं। हिन्दी के कथा-साहित्य में अमृत राय का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

अमृत राय की भाषा मजी हुई, सुरुचि पूर्ण तथा थोड़े-से शब्दों में समग्र रूप को व्यक्त करने में समर्थ है। आप केवल क़लम के ही धनी नही बल्कि ज़बान के भी धनी हैं। आप के भाव सुललित एव गभीर भी हैं। हिन्दी गद्य के शैलीकारों में आप अपना अनूठा स्थान रखते हैं।

आप के कई कहानी-संग्रह निकल चुके हैं। आप के उपन्यासों में 'बीज' उल्लेखनीय है।]

लाला छकौडीमल के बाप लाला पकौड़ीमल निहायत कैड़े के आदमी थे। पैसा बटोरने की ऐसी जन्मजात प्रतिभा बिरलों में ही पायी जाती है। कुछ अजब नहीं कि जब पकौड़ीमल धरती पर गिरे हों, तब राह ख़र्च के लिए (आख़िर दूर का सफ़र ठहरा!) अशर्फ़ियों की एक गठरी भी साथ आयी हो। ज़रूर ऐसी ही कोई बात थी, क्योंकि दुनिया ने देखा, एकाएक उनके बाप कचौड़ीमल की तकदीर खुल गयी, जैसे कोई बन्द

दरवाज़ा फट् से खुल जाय। ऐसी कही किसी की तकदीर खुलती है। लोग सारी ज़िन्दगी चौखट पर नाक रगडते रह जाते हैं, मगर तकदीर का दरवाज़ा नही खुलता और यहाँ रातो-रात कचौडीमल क्या से क्या हो गये। ज़रूर इसमे कोई न कोई गैबी खेल है। कही न कही अदृष्ट का हाथ ज़रूर है।

और इसमे शक नही था, वर्ना यह कैसे मुमकिन हुआ कि वही कचौडीमल जो अपने नाम को सार्थक करते हुए, सस्ता-कचौड़ी का खोमचा लगाते थे, साल-भर के अन्दर अन्दर शहर के एक मशहूर हलवाई हो गए जिसके यहाँ खरीददारों की भीड लगी रही थी। यकीनी बात है यह खजाना पकौडी ही अपने संग लाया था, अशर्फियो की शकल मे न सही, तकदीर की शकल में सही, मगर था वह खजाना उसी का लाया हुआ। सब अपना-अपना भाग्य साथ लाते है और पकौड़ी भी अपना भाग्य साथ लाया था।

कचौडीमल अपने इस प्रबल भाग्यशाली बेटे का नाम अशर्फ़ीमल रखना चाहता था, लेकिन बड़े-बूढों ने समझाया कि इससे अहकार की गन्ध आती है और अहकार बुरी चीज़ है। इसलिए कचौडीमल ने बडे बूढो की सलाह मानकर बेटे का नाम पकौडीमल रख दिया।

शहर के नामी हलवाई कचौडीमल का बेटा क्या कभी

पकौड़ी बेच सकता है? मगर उससे क्या, आदमी को सर झुकाकर चलना चाहिए।

पकौडीमल में लक्ष्मी की आराधना की जन्मजात प्रतिभा थी, यह कहने से हमारा अभिप्राय है कि वे लक्ष्मी को बुलाना भी जानते थे और बुलाकर रोक रखना भी जानते थे। यह ठीक है कि बहुत बार ये दोनों गुण एक ही व्यक्ति में मिल जाते हैं, मगर कभी कभी नहीं भी मिलते और फिर इस बात से कौन इनकार करेगा कि लक्ष्मी को एक बार बुला लेना फिर भी आसान है, बुला कर रोक लेना ही टेढ़ी खीर है इसलिए हमारे ऋषियों ने लक्ष्मी को चंचला कहा है।

लेकिन उन्ही ऋषियों ने अजामिल की कहानी भी तो कही है, जिसने मरते-मरते भूल से भगवान का नाम ले लिया, तो उसका परलोक सुधर गया।

सो पकौडीमल को भी अजामिल की कहानी मालूम थी नाम का महातम बड़ा है। नाम से अगर परलोक सुधर सकता है, तो इहलोक भी सुधर सकता है। सुधर सकता है क्या मतलब, सरीहन सुधरता है! उनसे पूछिए, जिनका नाम शुक्ल हैं, चतुर्वेदी हैं, मेनन हैं, अजी नाम का महातम बड़ा है। और मैं पूछता हूँ, अगर विष्णु का नाम स्मरण करने से विष्णु आ सकते हैं, तो लक्ष्मी का नाम सुमिरने से लक्ष्मी क्यों नहीं

आ सकती ? और यदि हर समय उन्हीं का नाम सुमिरते रहा जाय, तो फिर जा भी कैसे सकती हैं।

इस बात को ध्यान में रखकर विद्वान् सेठजी ने लक्ष्मी से ही विवाह कर लिया, नहीं, देवी नहीं, मानुषी लक्ष्मी से।

इतिहासकार को कहना होगा कि रामजी ने यह जोड़ी खूब ही अच्छी मिलायी। और यह उस दृष्टि से अत्यन्त फलवती सिद्ध हुई।

नाम के निरन्तर जप से पकौडीमल ने चचला लक्ष्मी को पूर्णत अपने वश में कर लिया। और लक्ष्मी के पूर्णत वश में आ जाने से घर रत्न राशि से भर चला और जहाँ दूसरे रत्नों की प्राप्ति हुई, वहाँ अनेकानेक कन्या रत्नों की भी, जिनके रूप रंग में एक विलक्षण वैविध्य था।

उधर लक्ष्मी की बहुविध सेवा से, छल से, प्रपंच से, सूद-दर-सूद से, फाडके से, रेहननामे और कुर्की से . घर में सोने-चादी का अम्बार लगने लगा इधर गृहलक्ष्मी की एक विधि सेवा से प्रतिवर्ष एक कन्या रत्न की निर्वाध उत्पत्ति होने लगी, जो पकौड़ीमल के लिए घोरतम मानसिक सताप का कारण था। हर बार जब दाई उन्हें आकर समाचार देती कि सेठानीजी को बिटिया हुई है, तो उनके माथे पर एक शिकन पड़ जाती और उनका मुँह पाच डिग्री टेढ़ा हो जाता। इस

वक्त, शादी के दसवें साल में उनके माथे पर शिकनें थीं, जिनमें से दो, एक साथ पड़ी थीं, जब तीन बरस पहले सेठानीजी को जुड़वा कन्यायें हुई थीं और (चिबुक को आधार मानते हुये) उनका मुँह चालीस डिग्री टेढ़ा था।

अपनी जाति में सेठ पकौडीमल की स्वभावत बड़ी नामवरी हुई लड़का हो लड़की, औलाद। औलाद यानी मर्दुमी का सार्टीफिकिट।

पता नहीं मज़ाक में या सच्चे दिल से अक्सर सेठजी की मित्रमण्डली में उनकी आठ अदद बेटियों का ज़िक्र निकल आता और कोई किसी तरह उनकी पीठ ठोंकता, कोई किसी तरह, लेकिन जहाँ तक खुद सेठ पकौड़ीमल की बात थी, उनसे ज्यादा दुखी आदमी संसार में दूसरा न था। और उसका कारण यही था कि भगवान की कृपा से आठ-आठ सन्तान के रहते हुए भी उनका वश चलने का उपाय न था, वश तो पुत्र से चलता है, बेटी तो पराये घर की होती है। और भगवान ने उन्हे पुत्र एक भी नही दिया था। इसी चिन्ता में बेचारे घुलते जा रहे थे। तो भी उनकी धनोपार्जन की क्षमता पर कोई वैसा दर्शनीय प्रभाव नहीं पड़ा था। रक़मों के उलट-फेर में उनके हाथ की सफ़ाई अब भी वैसी ही अक्षुण्ण थी। बाज़ार के चढ़ाव उतार को उनका दिमाग अब भी उसी तरह, बिजली

की तेज़ी से पकड़ता था। और इसीलिए उनकी धनराशि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही थी। पर तो भी क्लेश उनके मन में था, सेठ पकौडीमल के मन में।

और तभी सेठानीजी को नवीं बिटिया हुई। उसने सेठानीजी की तो नहीं, पर हाँ सेठजी की कमर तोड दी और क़रीब था कि वह संखिया खाकर सो जाते, मगर सेठानीजी के वैधव्य का विचार करके उन्होने संखिया नही खायी। तो संखिया तो उन्होने नही खायी, मगर इस बार रात मे ही उनके माथे की आठ शिकने चौदह हो गयी और मुँह का कोण ६४ ४८ डिग्री हो गया।

लेकिन भगवान की माया भी बडी विचित्र है। सेठ पकौडीमल जब अपने वंश के भविष्य की ओर से एकदम निराश हो चुके थे, तब उस चिर अभिलषित व्यक्ति का आविर्भाव हुआ, जो सेठ पकौडीमल का वंश चलायेगा गरज़ कि सेठजी की मुराद पूरी हुई। अब उनके पैर धरती पर न पड़ते थे। क्यो नही, उनका वंश अब चलेगा। डंके की चोट पर चलेगा। क्या कभी हरखमल के बेटे गिरधारीमल के बेटे जीतमल के बेटे पूरनमासीमल के बेटे चुन्नीमल के बेटे कचौडीमल के बेटे पकौडीमल का वंश डूब सकता है? हर्षातिरेक में उन्होने निश्चय किया कि मैं अपने बेटे का नाम

करोड़ीमल रखूँगा। मगर फिर बड़े बूढ़े आये और उन्होने कहा, घमण्ड बुरी चीज़ है। आदमी को सर झुकाकर चलना चाहिए।

बात सेठजी की भी समझ में आ गयी और उन्होंने अपने बेटे का नाम छकौड़ीमल रख दिया।

छकौडीमल का नाम भले छकौडीमल रहा हो, मगर ठाट-बाट राजकुमारो जैसा था। इतने निहोरो से जिन्होने दर्शन दिया, उनके ठाट बाट के क्या कहने। कन्याओ के उस अन्तहीन मरुस्थल में छकौडीमल एक हरे भरे उद्यान के समान थे। कन्याओ की उस हरहराती हुई प्रलय बाढ़ में छकौडी ही एक तिनके का सहारा थे। स्वभावत उनके स्नेह-सत्कार की कोई सीमा नही थी। उन्हे पान की तरह फेरा जाता सब उनको हाथो हाथ लिए रहते। वे राज-दुलारे थे, सबकी आँखो के तारे थे। चौबीसो घटे जो नाज़रबदारी, जो ले लपक छकौडीमल के लिए होती थी, वह, राजकुमार किस खेत की मूली है, कोतवाल साहब के लिए भी नही होती। कहना होगा कि सेठ पकौडीमल ने बेधड़क अपनी थैली का मुँह खोल दिया था। बारह नौकर तो अकेले छकौडीमल पर तैनात थे। रेस के जीतनेवाले घोडे पर भी इतने लोग क्या ही मुकर्रर होते होंगे, दाने-पानी के लिए दो-एक आदमी, मलने-दलने के लिए दो एक आदमी, घुमाने फिराने के लिए

दो-एक आदमी, बस बात खतम। मगर यहाँ तो पूरे एक दर्जन लोग थे। उन सबके अलग-अलग क्या काम थे, बतलाना बहुत मुश्किल है, क्योंकि किसी को यह बात नहीं मालूम थी। मगर तब भी सबों ने अपनी समझ से कुछ-कुछ इस तरह काम बाँट लिया था। एक छकौडी की मालिश करता था, दूसरा छकौडी को नहलाता था, तीसरा छकौडी के कपडे बदलता था, चौथा छकौडी को घुमाने ले जाता था, पाँचवाँ छकौडी की नाक पोंछता था, जी हाँ, यह भी एक पूरे वक्त का काम था और गालिबन इस पाँचवें आदमी को ही सबसे ज्यादा कड़ी मेहनत पड़ती थी और इसीलिए नाक पोंछनेवाले का यह पद (बाइ अपॉइन्टमेंट टु हिज़ रायल हाइनेस प्रिंस आफ़ वेल्स सेठ छकौडीमल।) किसी के लिए भी बहुत लोभनीय न था और जो क़िस्मत का मारा इस जगह पर आता, वह सदा तबादले की कोशिश में कोई दूसरी जगह दे दी जाय।

किस्सा कोताह, जो काम ऊपर बताये गये, वैसे ही और भी बहुत से काम थे, जो छकौडीमल की सेवकवाहिनी को व्यस्त रखते थे। मगर इस सेवकवाहिनी का सबसे अधिक समय परस्पर वाग्युद्ध करने में जाता था। एक के पास पिनपिनाते हुए छकौडिया के लिए एक नुस्ख़ा था, तो दूसरे के पास कोई दूसरा नुस्ख़ा और बारहवें के पास कोई बारहवाँ नुस्ख़ा

और बस महा-भारत छिड़ जाता। राम-प्रसाद छकौडीमल को एक कपड़ा पहनाता, तो रामदीन उसको उतारकर कुछ दूसरा और सीतला उसको भी उतार कर कोई तीसरा। कार्य का उचित विभाजन न होने के कारण एक-दूसरे के अनिश्चित या अर्द्धनिश्चित क्षेत्र पर इस प्रकार के हस्तक्षेप भी हर वक्त हुआ करते मगर इसी सब में समय बड़े सुन्दर ढंग से कट जाता, छकौडी और उनकी सेवकवाहिनी, दोनों का।

समय की धारा कब किसके लिये रुकी? इसी तरह मलते-दलते, रोते-गाते, नाक बहाते-नाक पोंछते...और बिस्तर पर ऐंड़ते अठारह साल बीत गये और तब एक रोज सेठ पकौडीमल के पास भगवानजी की चिट्ठी आयी कि आइये अब यहीं गद्दी लगाइये। सेठ पकौडीमल ने वह चिट्ठी पढी, तो बहुत उदास हो गये। उन्होंने चिट्ठी एक बार पढी, दो बार पढी, तीन बार पढ़ी और हर बार उन्हें उस निमंत्रण में आग्रह का सुर पंचम से धैवत और धैवत से निषाद पर चढ़ता हुआ सुन पड़ा। यह बात सेठ पकौडीमल को अच्छी नहीं लगी, क्योंकि उन्हें अपनी मर्त्यलोक की गद्दी ही ज़्यादा पसन्द थी। लेकिन क्या करते, दूसरी चिट्ठियों और भगवानजी की चिट्ठी में इतना अन्तर तो रहेगा ही।

हाँ, तो सेठ पकौड़ीमल उदास हो गये। अपने प्रिय पुत्र से सदा के लिए बिछुड़ जाने का विचार उन्हें और भी

उदास बना रहा था। पर तब भी उन्हें इस बात का संतोष था कि उनका वंश-दीप बुझेगा नहीं, वंशबेल सूखेगी नहीं। छकौडीमल के सम्बन्ध में इस समय यदि उन्हें कोई दुःख था, तो यही कि अपने वात्सल्य के अतिरेक में उन्होंने छकौडी को व्यापार में वह दीक्षा नहीं दी, जो उन्हें देनी चाहिए थी। गलती हुई, उन्हें छकौडी से काम कराना चाहिए था।

लेकिन स्वयं छकौडी को इस बात का कोई दुख नहीं था। और सच पूछिये, तो लम्बा मुँह बनाये रहने के बावजूद छकौड़ी को अपने पिता की आसन्न मृत्यु का भी कोई शोक नहीं था, क्योंकि वह उन थोथे, भावुक लोगों में अपनी गिनती नहीं करता था, जिनके लिये हर मृत्यु असामयिक होती है। यदि हर मृत्यु असामयिक होती है तो फिर सामयिक मृत्यु किसे कहते हैं? करोड़ों रुपये की संपत्ति खडी कर ली, बैंक में अकूत रुपया हो गया, घर के तहख़ाने में सोने चाँदी की ईंटों का अंबार लग गया, तमाम कम्पनियों में लाखों रुपये के शेयर हो गये, तीस लाख का जीवन बीमा हो गया, पच्चीस लाख के सरकारी कैश सार्टी-फिकेट खरीद लिये, ज़िन्दगी के सारे मज़े ले लिये, सारे तीरथ-नहान कर लिये, लड़कियाँ सब बियाह कर अपने-अपने घर चली गयीं, गिरस्ती सँभालने के लिये घर का लड़का बड़ा हो गया....अब और क्या चाहिये? सामयिक मृत्यु और कैसी

होती है ? मरना तो सभी को है एक दिन, अमृत की घरिया पी कर तो कोई आया नहीं !

छकौड़ी का कहना बिलकुल ठीक है । सेठ पकौड़ीमल की मृत्यु के लिये यही घडी सबसे शुभ है । उन्हें अब एक दिन की भी देरी नहीं करनी चाहिए ।

छकौड़ी के मन में तो यही बात थी, मगर लोक-लाज के मारे लंबा-सा मुँह बनाये घूम रहा था, जैसे उससे अधिक शोकार्त प्राणी संसार में दूसरा न हो । पर अभिनय की कला में भी वह कच्चा ही था और यह बात मरणासन्न पिता के संग वार्त्तालाप के दूसरे वाक्य में ही खुल गयी, मगर ख़ैरियत यही थी कि कोई उसे पकड नहीं सका ।

पिता ने आँसू पोंछ कर भर्राये हुए स्वर में कहा—बेटा...

पुत्र ने और भी भर्राये हुए स्वर में कहा—बप्पा...

यहाँ तक तो ठीक था, मगर जब पिता ने प्रेम में पगे हुए स्वर में पूछा—मैं नहीं रहूँगा, तो तुम्हें कैसे लगेगा, छकौड़ी ?

तब छकौड़ी ने अपने पिता को न तो ऐसी बात कहने से रोका, न दम-दिलासा देने की कोई कोशिश की, बल्कि काफी नाटकीय शैली में अपने पितृ-प्रेम की घोषणा की—बप्पा... तुम नहीं रहोगे, तो मुझे बड़ा दुख होगा ।

बप्पा के प्राण शायद पुत्र की यही भाव-विह्वल वाणी सुनने के लिए अटके हुए थे। उन्हें कहानियों में वर्णित तीनों हिचकियाँ आयीं और वे स्वर्ग सिधार गये।

सेठ पकौड़ीमल की मृत्यु उनके लिए भले ही सामयिक न रही हो, पर उनके उत्तराधिकारी सेठ छकौड़ीमल के लिए तो अवश्य सामयिक थी। उन्हें अब वह स्वतंत्रता चाहिए थी, जो पिता के रहते किसी प्रकार संभव न थी।

अपनी सेवकवाहिनी के संसर्ग में नारी देह और नर-नारी के सम्बन्ध को ले कर जो विशद, सचित्र, सुललित चर्चा उसके कानों में छुटपन से ही पड़ती रहती थी, उस मधुर त्तण ने किशोर छकौड़ी के मन में अनेक रंग-बिरंगी पहेलियों की सृष्टि कर दी थी। अब उन पहेलियों के अर्थ खुलने के दिन आये थे और करोड़पति बुड्ढा बाप मरने का नाम ही न लेता था। और सेठ पकौड़ीमल मर गये, तो छकौड़ीमल को इतनी मर्म-व्यथा हुई कि उन्हें विवश हो कर सुरा और सुन्दरी की संकरी गली पकड़नी पड़ी।

पकौड़ीमल का अपना वंश चलने की बड़ी चिन्ता थी, सो पितृ-भक्त छकौड़ी ने सोचा कि उस काम को ज़रा बड़े पैमाने पर करना चाहिए। फलतः उन्होंने विवाह न करने का व्रत ले लिया और आज देश-देशान्तर में न जाने कहाँ-कहाँ, किस-किस

गली-कूचे में हरखमल के बेटे गिरधारीमल के बेटे जीतमल के बेटे पूरनमासीमल के बेटे चुन्नीमल के बेटे कचौड़ीमल के बेटे पकौड़ीमल का वंश फल-फूल रहा है ।

लेकिन अपनी उन अनेकानेक व्यस्तताओं में भी छकौड़ीमल को अपने दानवीर पिता की स्मृति निरन्तर कचोटा करती थी । और आखिरकार दानवीर बाप के दानवीर बेटे ने पिता की पुण्य स्मृति को अमर बनाने की दृष्टि से लोकहित में एक बड़ा निर्माण-कार्य कर डाला ।

कैनस्टन स्ट्रीट और बेनीराम झुनझुनिया स्ट्रीट जहाँ पर मिलती हैं, वहाँ पर घोड़ों के पानी पीने की एक छः छः फुट लम्बी और तीन फुट चौडी, छोटी-सी पत्थर की चरही बनी हुई है । यह निर्माण किस महान् आत्मा की स्मृति में हुआ है, पथिकों की इस सहज जिज्ञासा को शांत करने के लिये चरही के ठीक ऊपर एक बारह फुट लम्बा और बारह फुट चौड़ा विराट् पत्थर लगा हुआ है, जो बतलाता है कि अपने प्रातः स्मरणीय, पुण्यश्लोक पिता सेठ पकौड़ीमल की पावन स्मृति में सेठ छकौड़ीमल ने अमुक मास अमुक संवत् में यह चरही बनवायी ।

चरही बनवाने में कुल ग्यारह रुपये चौदह आने का खर्च आया और नाम का पत्थर लगाने में पच्चीस रुपये, इस प्रकार

कुल ख़र्च आया छत्तीस रुपये चौदह आने।

जीते-जी सेठ पकौड़ीमल ने मनुष्य-जाति पर अनेकानेक उपकार किये, मगर घोड़ों पर कोई उपकार नहीं किया। मरने के बाद उनके बेटे की इच्छा से वह कमी भी पूरी हो गयी।

मगर आजकल के घोड़े तक एहसानफ़रामोश हो गये हैं। लिहाज़ा इस चरही पर आ कर वे पानी तो कम पीते हैं, हँसते ज़्यादा हैं, खूब दांत निकाल-निकाल कर, जैसे घोड़े ही हँस सकते हैं।

कठिन-शब्दार्थ

निहायत = **बहुत**
कँडा = **मान**
गैबी = **रहस्य**
सूद दर सूद = compound interest
प्रपंच = **धोखा**
रेहन नामा = Mortgage deed
कुर्की = Attachment
अंबार = **ढेर, राशि**; multitude, company
शिकन = **झुर्री**, Wrinkle
जुड़वाँ = **युगल**; Twin
नामवरी = **यश**, Fame
मर्दुमी = manliness
अदद = A number, A figure

पीठ ठोकना = धैर्य बँधाना, To encourage.
कमर तोड़ना = साहस का अंत कर देना
संखिया = Arsenic.
गरज = इच्छा
मुराद = मन की इच्छा, Inclination, Wiser.
गालिबन = Probably.
लोभनीय = लोभ से भरा हुआ.
किस्सा कोताह = कथा-कहानी.
पिन पिनाना = छोटे बच्चों की तरह रोना.
अकूत = बेहद
हिचकियाँ लेना = मरने को तैयार होना
गली कूचा = A narrow path
फलना फूलना = बढना
कचोटना = मन को बेधना
चरही = A manger
संवत = An Era
एहसानफरामोश होना = कृतघ्न होना
लिहाजा = इज्ज़त, Modesty

नवयुवक और स्वावलम्बन

शांतिप्रिय द्विवेदी

[हिन्दी के मूर्धन्य आलोचकों में पं० शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। श्री द्विवेदी जी एक ही साथ सफल समालोचक, निबन्ध लेखक तथा संपादक हैं। आपके संस्मरण हिन्दी जगत में काफ़ी लोकप्रिय हो चुके हैं।

आपकी समीक्षा में गांधीवाद का प्रभाव है। रचनात्मक समीक्षा आपकी विशिष्टता है, ध्वंसात्मक नहीं।

आपकी आलोचनाओं में काव्य का सा आनन्द मिलता है। साहित्य, कला, संस्कृति एवं जीवन को ले कर आपने जो समीक्षात्मक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं, वे अमर हैं। सर्वोदय विचार धारा से आप बहुत प्रभावित हैं।

आपने "वीणा" और "कमला" नामक मासिक पत्रिकाओं का बरसों सफलतापूर्वक संपादन किया है।

आपने दर्जनों में पुस्तकें हिन्दी भारती को भेंट की हैं। आपकी विशिष्ट कृतियों में "साहित्यकी" "कवि और काव्य" "सामयिकी" "पदचिन्ह" 'परिव्राजक की प्रजा" "ज्योति-विहग" और "जीवन-यात्रा" उल्लेखनीय हैं।]

स्वावलम्बन पुरुषत्व का मुख्य लक्षण है। प्रत्येक प्राणी के जीवन में सब से पहली समस्या यह उपस्थित होती है कि वह अपने हाथ-पाँव डुलाये और उनके द्वारा जीवन की आवश्य-

कताओं की पूर्ति करे। ईश्वर ने प्रत्येक प्राणी को केवल इसी लिए पृथक-पृथक शक्ति प्रदान की है कि वह अपने बल से अपना जीवन निर्वाह कर सके, उसे परमुखापेक्षी न बनना पड़े। जिस मनुष्य में आत्म-निर्भरता नहीं है, जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परावलम्बी है, विश्व में वही मनुष्य दूसरों का दास बना हुआ है और घोर परवशता में पड़ा है। परवशता में पड़े हुए मनुष्यों के लिए संसार में कहीं भी सुख नहीं है। स्वावलम्बन एक दैवी गुण है। इस गुण-रत्न की उपेक्षा करने-वाले नारकीय कष्टों के भागी बनते हैं। संसार उनकी दशा पर हँसता है। जो मनुष्य स्वतः अपनी सहायता के लिए तैयार नहीं है, वह संसार-द्वारा ही तिरस्कृत नहीं होता बल्कि विधाता के दरबार में भी उसकी पुकारों की सुनवाई नहीं होती। किसी ने कहा है—

"स्वावलम्बन है जिसे न प्यारा।
देता उसे जगदीश्वर भी न सहारा।"

अतः जीवन के रणक्षेत्र में विजयी वीर बनने के लिए सबसे पहले स्वावलम्बन को ग्रहण करना चाहिये। इसी के बल पर हम संसार के कष्टों को पराजित कर सकेंगे। और तब हमें संसार आदर की दृष्टि से देखेगा, प्रेमपूर्वक अपनायेगा।

स्वामी सत्यदेव जब अमेरिका में विद्याभ्यास कर रहे थे,

उन दिनों एक बार उन्हें एक मोची की दूकान पर जाने की आवश्यकता पड़ी। आपने अपने फटे जूते को मोची के सामने रख कर कहा– "इसकी मरम्मत जल्द कर दो।" उस समय मोची कार्याधिक्य से व्यग्र था। उसने तागा और सूआ स्वामी जी के सम्मुख रख कर कहा—"इस समय कार्याधिक्य के कारण मुझे आपका काम करने के लिये अवकाश नही है आप कष्ट उठा कर अपना काम स्वय कर लीजिये।" उस समय स्वामी जी को अमेरिका गये थोडे ही दिन हुए थे अत वहाँ के रस्म-रिवाज से अपरिचित होने के कारण उन्होने अपने भारतीय सस्कारो के अनुसार मोची की ओर घूम कर कहा—तुम मुझ से मजाक कर रहे हो? भला, मै एक पढ़ा लिखा आदमी हो कर जूते सीऊँगा।" मोची ने स्वामीजी के हृदय का भाव समझ लिया। उसने मुस्कुरा कर कहा—"महाशय, आप इस देश में अभी थोड़े ही दिनो से आये हुए हैं। यही कारण है जो आपको मेरी बात पर नाराज होने की आवश्यकता पड़ी। क्षमा कीजिएगा। मुझे आपके मुँह से यह बात सुन कर बड़ा विस्मय हुआ कि आप पढे-लिखे हो कर भी अपना जूता अपने हाथ से नहीं सी सकते। यदि आप इस देश में विद्याभ्यास के लिए आए हैं तो इस तरह के काम अपने हाथो आपको करने की आदत डालनी होगी। देखिए, मैं शिकागो विश्वविद्यालय (अमेरिका) का एम० ए० हूँ और आप यह देख कर

विस्मित होंगे कि मैं पढ़-लिख कर मोची का काम कर रहा हूँ। मेरे पिता एक धनाढ्य व्यक्ति हैं; किन्तु मुझे उनके धन से कोई वास्ता नहीं। मैं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वतः अर्थोपार्जन करना चाहता हूँ। हमारे विश्वविद्यालय की सब से पहली शिक्षा यह है कि यदि तुम अपने को मनुष्य कहना चाहते हो तो संसार में अपने पैरों आप खड़े होओ। दूसरे के परिश्रम और पूँजी पर आश्रित रहना आलस्य को बुलाना है, ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों की हत्या करनी है। जिस मनुष्य में स्वावलम्बन नहीं है, यह शिक्षित कहलाने का अधिकारी नहीं; क्योंकि उसने संसार के एक बहुत बड़े सबक (स्वावलम्बन) को नहीं सीखा। प्रत्येक देश के विद्यार्थियों को पहली शिक्षा यह मिलनी चाहिए कि वे अपने जीवन में स्वावलम्बी बनें, किसी के आश्रित रह कर जीवन व्यतीत न करें। विद्यार्थी ही देश के भावी कर्णधार हैं। यदि वे स्वावलम्बी निकले तो उनका देश भी स्वतंत्र रहेगा; अन्यथा परावलम्बन का पाठ पढ़े हुए विद्यार्थी अपने देश को भी परावलम्बी बना देंगे। उनका देश विदेशियों के हाथ में जा कर परतंत्र बन जाएगा।"

अमेरिकन मोची के उपर्युक्त विचार स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य हैं। भारत आज परावलम्बी और परवश है। अधिकांश शिक्षित भारतीयों में, जिनके हाथ में देश के उत्थान पतन

की बागडोर है, स्वावलम्बन का अभाव है। विद्यार्थी अवस्था में उन्हें स्वावलम्बन की शिक्षा मिली ही नहीं। ऐसे हजारों नवयुवक दिखलाई पड़ते हैं, जो वर्षों तक स्कूलों और कालेजों में विद्याभ्यास करने पर भी इस योग्य नहीं निकलते कि वे अपने पैरों आप खड़े हो सकें, अपनी रोटियाँ आप कमा सकें। इसमें दोष किसका है? हमारे विद्यार्थियों को छोटी अवस्था से ही परावलम्बन की टेव है। धनाढ्यों के लड़के जब स्कूलों में पढ़ने जाते हैं, उस समय उनकी पुस्तकें स्कूल में पहुँचाने के लिए एक नौकर जाता है। वे स्नान करते हैं, तो वस्त्र धोने के लिए भी नौकर की आवश्यकता पड़ती है। जब उन्हें प्यास लगती है, तब जल देने के लिए भी नौकर की दरकार होती है। इस प्रकार छोटी-छोटी बातों में भी पग-पग पर उनके हृदय में परावलम्बन का बीजारोपण किया जाता है; फिर तो आजन्म के लिए हृदय में परावम्बन और आलस्य के संस्कार पड़ जाते हैं। ऐसे सैकड़ों हैं जिन्हें एक शाम पेट भर खाने को भी नहीं मिलता, जिन्हें आवश्यकतानुकूल वस्त्र नहीं मिलते, और जो पैसे-पैसे के लिए मुहताज हैं। इतनी आफ़तों के पश्चात् भी अभागे स्वावलम्बनपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए कटिबद्ध नहीं होते। काशी में संस्कृत के विद्यार्थी क्षेत्रों में रोटी खा कर विद्याभ्यास करते हैं। उनकी दशा यहाँ तक हीन है कि उन्हें सोने के लिए कहीं थोड़ी-सी जगह भी नहीं मिलती। विपत्तियों

की ये पर्वत-मालाएँ क्यों हैं ? केवल इसीलिए कि उनकी प्रकृति पराश्रिता बन गयी है। वे अपने कष्टों का अनुभव करते हैं; किन्तु उन्हें दूर करने के लिए आत्मावलम्बन का सहारा नहीं लेते। वे अपनी ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों का सदुपयोग करना नहीं जानते। जरा अमेरिका और यूरोप के होनहारों की दशा देखिए। माँ-बाप अपने बालकों को पाँच वर्ष की उम्र में स्कूलों में पढ़ने के लिए भेज देते हैं। वहाँ छोटे-छोटे बालकों को पहली शिक्षा यह मिलती है कि वे अभी से कुछ कमाने लगें और संभव हो तो माँ-बाप का आश्रय छोड़ कर अपनी रोटियाँ भी स्वतः कमायें। इसका परिणाम यह होता है कि पाँच सात वर्ष के बच्चों में स्वावलम्बन के संस्कार अपना अधिकार जमाने लगते हैं। अमेरिका के संस्कार अपना अधिकार जमाने लगते हैं। अमेरिका के बड़े-बड़े शहरों में छोटे-छोटे बालक अखबार बेच कर और खेतों में मजदूरी कर के पैसे कमाते हैं और अपनी छोटी-मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः अपनी जेब से कर लेते हैं। वहाँ पर्यटकों ने पांच-पांच वर्ष के ऐसे बालकों को देखा है, जो अपनी रोटियाँ आप तो कमाते ही हैं, साथ ही अपने पुरुषार्थ और स्वावलम्बन से दो-दो, तीन तीन सौ डालर के धन बैंकों में जमा कर रखे हैं। जिस देश के बच्चे छोटी उम्र में इस प्रकार के उद्योगी और स्वावलम्बी दिखाई पड़ते हैं, वे बड़े हो कर कैसी परिस्थिति में जीवन व्यतीत

करेंगे, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। भारत के धनाढ्यों के नवयुवक पुत्र पैतृक सम्पत्ति का आश्रय लेकर विद्याभ्यास करते हैं। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् भी वे पिता की संपत्ति के बल पर ही गुलछर्रे उड़ाते हैं। अन्त में उन्हें एक वह भी दिन देखना पड़ता है, जब कि वे निर्धनता और परवशता की शृंखला में आबद्ध होते हैं। अमेरिकन धनाढ्यों के बालक पैतृक संपत्ति को कोई चीज ही नहीं समझते। उन्हें पिता की जायदाद की अपेक्षा अपनी भुजाओं पर बड़ा विश्वास रहता है। समाचार-पत्रों में एक बार प्रकाशित हुआ था कि अमेरिका के राष्ट्रपति कूलिज का लड़का बीड़ी की दूकान पर बीड़ी बनाने का काम करता है और इस प्रकार वह उद्योग-वीर बालक अपनी आजीविका का संचालन स्वतः कर रहा है। एक राष्ट्रपति का लड़का भी मजदूरी करके स्वावलम्बन के उच्च सिद्धान्त को अपना रहा है, पर हमारे यहाँ?

संसार में जितने उन्नतिशील पुरुष हुए हैं, उनके उन्नति का आधार स्वावलम्बन था। वे अपने पैरों आप खड़ा होना जानते थे। महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, गारफील्ड, अब्राहम-लिंकन आदि निर्धन स्थिति से ऊपर उठनेवाले महानुभावों ने अपनी विद्यार्थी-अवस्था में, नहीं-नहीं अपने समस्त जीवन में,

स्वावलम्बन को अपनाया था। वाशिंगटन महोदय एक कुली माँ-बाप के लड़के होकर स्वावलम्बन और पुरुषार्थ के बलपर यहाँ तक उन्नत हुए कि उन्होंने अमेरिका में एक "टस्केजी महाविद्यालय" स्थापित कर संसार में अपना नाम अमिट कर दिया। अमेरिका के दानवीर कार्नेगी ग्यारह वर्ष की अवस्था में मजदूर थे। बीस वर्ष की ही अवस्था में आप एक पूँजीपति बन गये। अपने औदार्य-स्वरूप उन्होंने अमेरिका में "कार्नेगी विश्वविद्यालय" स्थापित कर अपनी महत्ता का परिचय दिया। क्या कोई कह सकता है कि ये महानुभाव परावलम्बी और पराश्रित रहकर ही इतने उन्नत हुये? कार्नेगी ने अमेरिका के अपना "शिल्प विद्यालय" स्थापित करते हुये कहा था— "इस विद्यालय के स्थापित करने से मेरा तात्पर्य यह है कि हमारे देश के विद्यार्थी शिल्प-विद्या सीखकर स्वावलम्बी बनें। स्वावलम्बन ने ही मुझे इस योग्य बनाया कि मैं अपने देश के नवयुवकों के लिये शिल्प-विद्यालय खोलने को सन्नद्ध हो सका।" क्या हम आशा कर सकते हैं कि हमारे देश में भी ऐसे धनाढ्य दिखलाई पड़ेंगे, जो कार्नेगी के सिद्धान्त और कार्य का अनुकरण कर भारतीय विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनायेंगे? उनके अभ्युत्थान केलिये तरह-तरह के शिल्प-विद्यालय खोलेंगे? यह संतोष की बात है कि स्वनामधन्य महाराज महेंद्रप्रतापजी ने भारतीय विद्यार्थियों को कलाकौशल सिखलाने केलिए "प्रेम-महा-

विद्यालय" में अपनी सारी सम्पत्ति लगा दी; किन्तु देश में पचीसों "महेन्द्रों" की आवश्यकता है।

अमेरिका के प्रसिद्ध धनाढ्य रॉकफेलर महोदय युवावस्था में बड़े गरीब थे; किन्तु स्वावलम्बन ने उनके लिए सौभाग्य का द्वार खोल दिया। अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक मिस्टर कावेट छोटी उम्र में दाने-दाने के लिये तरस रहे थे। कालांतर में वे एक बड़े सेनाध्यक्ष तथा लेखक हुये। चाय के प्रसिद्ध व्यापारी मिस्टर लिपटन बाल्यावस्था में एक गुमाश्ते का काम करते थे। क्रमशः वे इस दशा को पहुँचे कि उनकी आविष्कृत चाय संसार के कोने-कोने में बिक रही है। महापुरुषों के जीवन में यही एक खास बात मिलेगी कि वे विश्व में अपने पैरों से ही उन्नति-शिखर के आरोही हुये थे। जब तक वे पराश्रय का मुँह देखते रहे, तब तक उनकी पूछ नहीं थी; किन्तु स्वावलम्बन से वे ही भाग्य-गगन में चमक उठे।

एक प्रसिद्ध मुगलसम्राट् अपने हाथ से कुरान लिख-लिखकर मुसलमानी तीर्थों में बेचता था और उससे जो कुछ धन प्राप्त होता उसी से वह अपना जीवन-निर्वाह करता था। एक बार किसी ने उससे पूछा—"हुजूर, बादशाह होकर भी आपको धन की क्या कमी है, जो कुरान लिख-लिखकर उसे बेचने के लिये व्यग्र रहते हैं?" सम्राट् ने कहा—"मैं अपने हाथ-पाँव को अमर्यादित नहीं बनना चाहता। ईश्वर ने मुझे इन्हें इसलिए

दिया है कि मैं इनके द्वारा अपने शरीर को सुखी रक्खूं। जो हाथ-पाँव रहते हुए भी दूसरे के धन और परिश्रम पर गुलछर्रे उड़ाता है, वह अपाहिज है, क्योंकि अपाहिजों में ही यह शक्ति नहीं होती कि वे अपने हाथ पाँव डुलाकर कुछ कमा-खा सकें। प्रजा का संचित धन उसकी भलाई के लिये है, न कि मुझे मुफ्तखोर और आराम-पसंद बनाने के लिये।" सम्राट् स्वावलम्बन पर जोर देते हुये भी अपाहिजों को परावलम्बी देखकर उनकी असमर्थता की दशा में उन्हे क्षम्य समझता था, परन्तु बीसवीं शताब्दी में विदेशियों ने अपाहिजों को परावलम्बन में जीवन व्यतीत करते देखकर उन्हे भी क्षम्य नहीं समझा। वे अपने बुद्धि वैचित्र्य से लँगड़े, लूले अपाहिजों केलिये भी तरह-तरह के उद्योग-केंद्र स्थापित कर रहे हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक उसे परावलंबी नहीं बनने दिया जाता। लँगड़े, लूले बन जाने पर भी भिक्षा की शरण नहीं लेनी पड़ती। इतने पर भी यदि कोई भिक्षुक दिखलाई पड़ता है तो पुलिस उसे जेल में ठूँस देती है। यदि वह जेल से बाहर रहकर मेहनत करके नही खाता तो जेल मे उसे अवश्य ही परिश्रम करना पड़ता है। यह स्वतंत्रता का वरदान है, पराधीनता का शाप नही।

कठिन-शब्दार्थ

स्वावलम्बन = Self-reliance **अपने ही भरोसे रहकर और अपने बलपर काम करना**

प्रदान करना = देना
आत्मनिर्भरता = Self-support
रस्मरिवाज = परिपाटि
बागडोर = लगाम
टेव = आदत
दरकार = आवश्यकता
पगपग पर = बराबर
मुहताज = दरिद्र
गुलछर्रे उडाना = खूब मौज उडाना
आजीविका = जीवनोपाय
शिल्प विद्या = Architecture
अभ्युत्थान = उन्नति
स्वनामधन्य = वह जो अपने नामसे ही प्रसिद्ध हो
दाने दाने के लिए तरसना = दरिद्रता के कारण भोजन का बहुत अधिक कष्ट उठाना।
अपाहिज = अंगहीन
लूला = जिसका हाथ कटा हो
ठूँस देना = खूब कस कर भरना।

दिल्ली से श्रीनगर

यशपाल

[श्री जैन जी हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान हैं। आपने समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित कीं। वे हिन्दी साहित्य में अपना अमूल्य स्थान रखती हैं।

आपने बालकोपयोगी अनेक पुस्तकों का सफलता पूर्वक संपादन किया है। वे सब रचनाएँ सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक हैं।

आपने अनेक देशों का पर्यटन करके वहाँ की विशेषताओं पर उत्तम लेख प्रकाशित किये हैं।

भारत-भर में भ्रमण करके यहाँ के पुण्य तीर्थों तथा अन्य प्रमुख स्थानों पर परिचयात्मक सुन्दर लेख प्रकाशित किये हैं। जय अमरनाथ' यात्रा संबन्धी आपकी श्रेष्ठ पुस्तक है।

आपने 'दशमी' इत्यादि कई ग्रन्थों का संपादन कर हिन्दी पाठकों का अच्छा उपकार किया है।

आप एक ही साथ अच्छे लेखक, संपादक, एवं पर्यटक हैं। इस समय आप सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली के प्रकाशन विभाग के अधिकारी हैं। आप हिन्दी साहित्य को सुरुचिपूर्ण एवं परिष्कृत विचारधारा संबन्धी पुस्तकें प्रदान करते हुए हिन्दी की स्पृहनीय सेवा कर रहे हैं।]

गर फिरदौस भर रुए जमींअस्त।
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो हमीं अस्त॥

——अगर ज़मीन पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं (काश्मीर में) है यही है, यही है।

काश्मीर जाने की इच्छा बहुत दिनों से हो रही थी। उसके महान प्राकृतिक सौंदर्य, कला कारीगरी तथा स्वास्थ्यप्रद जीवन के बारे में मुद्दत से पढ़ता और सुनता आया था और अब जबकि राजनैतिक उतार-चढ़ावों ने उसे दुनिया के नक्शे पर सामने ला दिया था तो स्वभावतः हमारी दिलचस्पी उसमें और बढ़ गई थी, लेकिन इच्छा होने और अनेक बार प्रयत्न करने पर भी जाने का सुयोग न मिला। पिछले साल तो परमिट तक आ गये थे, लेकिन ऐन मौके पर जाना रुक गया। इस वर्ष सोचा कि कुछ भी हो वहां अवश्य जाना है, सो बिना अधिक सोचे तथा ठहरने आदि का खास प्रबन्ध किये ३ सितम्बर को चल पड़े। हमारी पार्टी में कुल ८ जने थे। हिन्दी साहित्य मंदिर, अजमेर के सचालक श्री जीतमलजी लूणिया, मार्तण्डजी उपाध्याय, उनकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी, आरोग्य मंदिर, गोरख-पुर के सचालक श्री विट्ठलदास मोदी, लेखक की पत्नी श्रीमती आदर्शकुमारी, पुत्री अन्नदा चिरंजीव सुधीर और लेखक। रात को दिल्ली से काश्मीर मेल द्वारा पठानकोट को रवाना हुए। गाड़ी चली तो सामान जचा कर आपस में बातें करने लगे। बहुत दिनों की इच्छा पूरी हो रही थी, लेकिन काश्मीर की यह

पहली यात्रा होने के कारण बहुत-सी आशङ्कायें भी मन में उठती थीं। पठानकोट सवेरे पहुँच जायगे। फिर दो दिन बस का सफर करना होगा। किसी की तबीयत खराब होगई तो? श्रीनगर में कहाँ ठहरेंगे? यात्रा में मार्गदर्शन कौन करेगा? आदि-आदि बहुत से प्रश्न मन में उठते थे, लेकिन उनका समाधान कौन करता?

रात भर का सफर था। थोड़ी देर चर्चा कर-कराकर सो गये। सवेरे आख खुली तो पठानकोट आनेवाला था। पौने सात पर वहाँ पहुँचे। काश्मीर केलिए यही अतिम स्टेशन है। आगे कार या बस द्वारा जाना होता है। हवाई जहाज भी जाता है। पर जिन्हें काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के दर्शन करने हैं, उन्हें बस पर या कार से ही जाना चाहिए। समय अधिक अवश्य लगता है पर यात्रा का असली आनद इसी में आता है। पहले रेल जम्मू तक जाती थी, लेकिन भारत-विभाजन के बाद कुछ रास्ता पाकिस्तान में चले जाने के कारण अब पठानकोट तक ही रह गई। पठानकोट काफ़ी बडी जगह है। बस्ती घनी और फैली है। लम्बा-चौड़ा बाजार है, जिसमें सब चीजें मिल जाती हैं।

सामान तुलवाने, नहाने-धोने, नाश्ता करने आदि में क़रीब एक घटा लग गया। ८३० पर टूरिस्ट बस से रवाना हुये।

बस में देश के अलग-अलग भागों के २१ मुसाफ़िर थे। एक गुजराती-परिवार मोम्बासा (अफ्रीका) से आया था। श्रीनगर तक २६७ मील का रास्ता था, जो हम लोगों को बस के द्वारा तय करना था।

११ मील पर लखनपुर आया। वह भारत और काश्मीर की सीमा पर है। वहाँ हम लोगों के परमिट देखे गये और सामान जांचा गया। कोई एक घंटा लगा। फिर आगे बढ़े।

जम्मू तक का रास्ता बहुत मामूली है। ऐसा लगता है, मानों किसी मैदानी प्रदेश में चल रहे हैं। न ऊँचे पहाड़; न जंगल। पठानकोट से जम्मू ६७ मील है। १२ बजे के लगभग पहुँचे। जम्मू काश्मीर का एक बड़ा नगर है। शीतकाल में काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से हटकर यहीं आ जाती है। ऊँचाई कुल १३०० फुट है। कई दर्शनीय स्थल हैं। रघुनाथजी का मंदिर बड़ा विशाल है। उसे देख कर और बाजार में चक्कर लगाकर आगे बढ़े।

अब मार्ग इतना सुन्दर था कि बिना देखे उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। ऊँचाई ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, दृश्य एक-से-एक बढ़कर आते गये। संयोग से हमारी टोली में वयोवृद्ध से लेकर महिलाओं तथा बालक सब थे, पर जान पड़ता

था, मानो उत्साह ने आयु के अंतर पर आवरण डालकर सब को एक पंक्ति में खड़ा कर दिया। बात-बात पर हम लोग अट्टहास कर उठते थे और प्रत्येक सुन्दर दृश्य को देख कर आनन्द से उछल पड़ते थे।

४२ मील पर ऊधमपुर आया। वह महत्वपूर्ण सैनिक केन्द्र है। शाम को चार बजे हम लोग कुद पहुँचे। उसकी ऊँचाई ५७०० फुट है। बडी सुन्दर जगह है। चीड़ और देवदार के घने जगल हैं। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है।

रात हम लोगो ने कुद से कुछ आगे बटोत में बिताई। यह स्थान कुद से थोड़ी निचाई पर है। ठहरने के लिए डाक बगला है। छोटी-सी बस्ती और बाजार भी है। अगले दिन सबेरे ही वहाँ से रवाना होकर ८ बजे रामवन पहुँचे। रास्ते की शोभा वर्णनातीत थी। पठानकोट से निकलते ही रावी नदी मिली थी, जम्मू से कई मील तक रावी साथ रही और बटोत के बाद चिनाब मिल गई। उछलती-कूदती, कल कल निनाद करती वह बही जा रही थी। पर्वतो के योग से उसके द्वारा निर्मित प्राकृतिक दृश्य अद्भुत थे।

बनिहाल पहुँचे तो दोपहर हो चुका था। वहाँ भोजन किया, कुछ फल खरीदे और फिर आगे बढ़े। अब आगे चढ़ाई ही चढ़ाई थी। बनिहाल की सबसे ऊँची चोटी पीर

पचाल है, जो ८९८९ फुट है। कहते हैं; दुनिया का यह सब से ऊँचा मार्ग है। सड़कों के पाच-पाच चक्कर यहाँ दिखाई देते हैं और मोटरें और आदमी ऊपर या नीचे खिलौने जैसे जान पड़ते हैं।

पीरपंचाल के इधर जम्मू घाटी है, उधर श्रीनगर घाटी। यहाँ वर्ष में कई महीने बर्फ़ जमी रहती है और रास्ता बन्द रहता है। बनिहाल के पास से ५ मील लम्बी सुरग बनाई जा रही है। उसके पूरे हो जाने पर श्रीनगर का रास्ता बारहों महीने खुला रहेगा।

पीरपंचाल के उधर के दृश्य दूसरी तरह के हैं। शाली (धान) के खेत ऐसे लगते हैं मानों किसी ने सीढ़ियाँ बना दीं। आगे उतार-ही-उतार हैं।

रास्ते में एक ओर को थोड़ा-सा हटकर बेरीनाग आया। यह झेलम का उद्गम है। बड़ा सुन्दर स्थान है। बीच में एक कुंड है, जिसका जल एकदम नीला दिखाई देता है। पानी इतना साफ़ कि ५६ फुट की गहराई होते हुए भी तली साफ़ दिखाई देती थी। यहाँ अच्छा-खासा उद्यान है, जिसमें सेब और बग्गूगोशे के बहुत-से पेड़ हैं। अनेक रंगों के फूल और प्रपात इस स्थान को अनुपम सौंदर्य प्रदान करते हैं।

आगे गाजीगुण्ड आया। यहाँ से श्रीनगर तक मैदान—

ही-मैदान है। लगभग ५००० फुट की ऊँचाई पर इतना बड़ा मैदान कैसे बन गया, देख कर आश्चर्य होता है। सड़क के दोनों ओर सफ़ेदे के पेड़ों की कतारें हैं, जो प्रहरी जैसी लगती हैं। पाम-पुर से आगे केसर की क्यारियाँ देखीं, लेकिन केसर का मौसम न होने के कारण वे खाली पड़ी थीं।

५ सितम्बर को तीसरे पहर लगभग ४ बजे श्रीनगर पहुँचे। बस के अड्डे पर ज्यों ही गाड़ी रुकी कि होटल और हाउसबोटवालों ने घेर लिया। लगे शोर मचाने। हम लोगोंने उस ओर ध्यान नहीं दिया और अपना सामान संभालने लगे। हममें से एक साथी होटल और हाउसबोट देखने गये। ठहरने की व्यवस्था कहाँ की जाय, यह एक समस्या थी। जिनको सूचना दी थी, उनमें से कोई भी बस के अड्डे पर नहीं आया था, इससे चिन्ता हुई। आखिर काफ़ी पशोपेश और भागदौड़ के बाद हम लोग गोगजीबाग में श्रीमती कृष्णा मेहता के यहाँ पहुँचे। इस बहन के पति मुजफ्फराबाद के गवर्नर थे और जब कबालियों का काश्मीर पर आक्रमण हुआ तो उसकी रक्षा करते हुये वह शहीद हो गये। कृष्णा बहन अब वहाँ वीमेंस रिलीफ़ केन्द्र का संचालन कर रही हैं। वह कई बार काश्मीर आने का आग्रह कर चुकी थीं।

कृष्णा बहन के यहाँ सामान रखकर जान-में-जान आई।

एक रात रेल में और दो दिन बस में गुजरे थे। इससे शरीर बड़ा थका-सा था। सामान व्यवस्थित रखकर खूब नहाये और जलपान किया। नई जगह थी, मौसम सुहावना था। घूमने निकल पड़े।

श्रीनगर काश्मीर की राजधानी है। यहीं से लोग काश्मीर के विभिन्न दर्शनीय स्थानों की यात्रा करते हैं।

कठिन-शब्दार्थ

मुद्दत = अवधि, अधिक समय, बहुत दिन
आशंका = संदेह
डाक बंगला = Travellers bungalow.
सुरंग = A tunnel
अच्छा-खासा = Very excellent.
भागदौड़ = दौड़-धूप
शहीद = Martyar.

विश्व-शांति की ओर

श्री सुन्दर रेड्डी

[श्री रेड्डी जी दक्षिण के उत्तम लेखकों में अपना अच्छा स्थान रखते हैं। आप एक गंभीर चिंतक एवं आलोचक हैं। इन सब से बढ़कर एक आदर्श प्राध्यापक हैं। आप इस समय आंध्र विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं।

आपने समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर सुन्दर एवं अनुसंधान पूर्ण निबन्ध प्रकाशित किये हैं। वे सब अपना स्थाई मूल्य रखते हैं।

आपको एक ही साथ हिन्दी, तेलुगु एवं उर्दू पर असाधारण अधिकार प्राप्त है। तेलुगु में हिन्दी साहित्य संबंधी आपने जो निबंध प्रकाशित किये वे सब तेलुगु के श्रेष्ठ विद्वानों की प्रशंसाएँ प्राप्त कर चुके हैं।

आपका दक्षिण की अनेक संस्थाओं से संबद्ध है। आंध्र हिन्दी परिषद के तो आप प्रधान स्तम्भ कहे जा सकते हैं।

आपके अब तक प्रकाशित ग्रन्थों में "साहित्य और समाज" तथा "मेरे विचार" उल्लेखनीय हैं। "हिन्दी और तेलुगु साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन" आपके गंभीर अनुसंधान का उत्तम उदाहरण है।]

आर्थिक क्रांति ने आज दुनिया को युद्ध का मैदान बना दिया है। विभिन्न देशों की परिस्थितियों के परिशीलन से यही मालूम होता है कि दूसरे महायुद्ध का तो अन्त हो गया है, लेकिन

युद्ध के कारण ज्यों के त्यों बने हुए हैं। हर जगह युद्ध तो नहीं हो रहा है किन्तु सैनिक-शक्ति दिन दुगुनी और रात चौगुनी बढ़ रही है। जातियों के बीच और राष्ट्रों के बीच ईर्ष्या और द्वेष की आग धधक रही है और इस आग की चिनगारियाँ दुनिया के कोने-कोने में फैलती जा रही हैं। संयुक्त राष्ट्रमण्डल की स्थापना विश्व में शांति की स्थापना के लिए हुई थी। लेकिन जब हम उसकी तरफ़ नज़र दौड़ाते हैं तो उसमें भी दल-बंदियाँ अपने-अपने स्वार्थों के लिए आपस में संघर्ष करती दिखाई देती हैं। तब यह प्रश्न पैदा हो जाता है कि क्या इन भयानक युद्धों से कभी मानवता की रक्षा हो सकती है? क्या निकट भविष्य में फिर प्रचण्ड युद्ध का भयानक विस्फोट न होगा?

दुनिया के बड़े राष्ट्रों की दृष्टि आज आटमबम और राकेटों के ऊपर जमी हुई है। अमरीका का डर यह है कि कहीं रूस हैड्रोजनबम और राकेटों की (स्वयंगमनास्त्र) उत्पत्ति ज़्यादा न करे, तो रूस का डर यह है कि कहीं अमरीका ज़्यादा राकेट और आटम-बम न बनाये। दूसरे महायुद्ध के पहले दुनिया की राजनीति में जर्मनी और जापान का प्रभाव जोर से बढ़ रहा था किन्तु आज अमरीका और रूस का प्रभाव तेजी के साथ बढ़ रहा है। इंग्लैंड अपने प्रथम स्थान को खोकर द्वितीय स्थान पर आ गया है। फ्रांस तो अब दुनिया के राजनीतिक क्षेत्र में अपना महत्व खोकर अमरीका के हाथ एक कठपुतली बन गया है।

दुनिया का राजनीतिक क्षेत्र आज तीन भागों में बँटा हुआ नज़र आ रहा है। एक तरफ़ ऐंग्लो अमरीकन दल और दूसरी तरफ़ रूस-चाइना दल। ये दोनों प्रबल दल दुनिया में अपने प्रभाव की व्याप्ति और अपनी सैनिक-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए आपस में होड कर रहे हैं। इन दोनों दलों के बीच आज भारत ऐसा शक्तिमान बन गया है जो दुनिया के तमाम राष्ट्रों के शांतिप्रिय लोगों की दृष्टि को अपनी तरफ़ आकर्षित कर रहा है। इसलिए उपर्युक्त दोनों दलों को मजबूरन् भारत की वैदेशिक नीति की ओर ध्यान देना पड़ रहा है।

आज न केवल राष्ट्रों के बीच ही स्पर्धा जोर न पकड़ रही है, बल्कि दलित, पीडित मानवता भी आज क्रांति के पथ पर तेजी से कदम बढ़ा रही है। स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति के लिए अपनी जान की भी आहुति दे देने को वह आगे बढ़ रही है। इससे यही मालूम होता है कि जब तक मानव-समाज में सच्ची स्वतत्रंता की स्थापना न होगी तब तक खून खराबी बन्द न होगी। क्रांति की ज्वालाएँ और फैलती जाएँगी। जिन राज्यों की बुनियाद केवल राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों के ऊपर है और जो राज्य संकुचित-राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्र वेत्ताओं द्वारा संचालित है, वे तो मानव-स्वतंत्रता के महत्व को कदापि नहीं पहचानेंगे।

आज हमें यह बात अच्छी तरह हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि इस आटमबम और स्फुटनिक के युग में हिंसा के द्वारा शांति की स्थापना करने के लिए प्रयत्न करना हवा में मकान बनाने के समान है, क्योंकि हिंसा से प्रतिहिंसा बढ़ेगी और उससे रक्तपात होगा। एक से बढ़कर एक विनाशक यन्त्रों का आविष्कार होगा। तब इस हिंसा और प्रतिहिंसा का अन्त कब होगा? कैसे होगा?

यह निर्विवाद सत्य है कि अगर हमारे मनस्तत्व उसी प्रकार के रहें जिस स्थिति में आज हैं तो इस हिंसा और प्रति-हिंसा का अन्त कभी नहीं होगा। इन अचानक युद्धों से मानव-समाज को मुक्ति कभी नहीं मिलेगी। आजकल के हमारे मनस्तत्वों से यह सुस्पष्ट है कि दूसरी बातों में भले ही परिवर्तन हुआ हो, अन्य दिशाओं में हम लोगों ने भले ही उन्नति की हो, प्रकृति के संबंध में हमारा ज्ञान भले ही बढ़ गया हो, वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा हम लोगों ने अद्भुत वस्तुएँ भले ही बनायी हों लेकिन हमारा नैतिक-विकास नहीं हुआ। हमारे मानसिक-दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। हमारी आध्या-त्मिक उन्नति नहीं हुई। ये सब हमारी प्रारम्भिक दशा में ही हैं।

हमारा नैतिक विकास हो, हमारे मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हो। दूसरे शब्दों में, हमारी आध्यात्मिक उन्नति हो।

नैतिक विकास या आध्यात्मिक-उन्नति का अर्थ क्या है? संक्षेप में नैतिक विकास या आध्यात्मिक उन्नति का अर्थ है, मानवता की एकता का अनुभव। अर्थात् जिस तरह हमारे कुटुंब में एक को दुःख होने से हमें भी दुःख होता है, एक को सुख होने से हमें भी सुख होता है, उसी तरह मानव--समाज में किसी को भी दुःख हो तो हमें भी दुःख हो। किसी को सुख हो तो हमें भी सुख हो। आजकल हमारी यह भावना एक कुटुंब के अन्दर ही सीमित है किन्तु उसकी सीमा कुटुंब न हो। समस्त-मानव समाज हो। इसी एकता की भावना विकास को ही हम नैतिक विकास या आध्यात्मिक उन्नति कहते हैं। इस एकता की भावना को जब तमाम देशों के लोग महसूस करेंगे तभी मानव समाज में राजनीतिक और आर्थिक शोषण का अन्त होगा। तभी लोग परिश्रम के महत्व को समझेंगे। तभी सुप्त मानवता की आँखें खुलेंगी और जुल्म एवं सितम के खिलाफ वह विद्रोह का झंडा उठावेगी।

यही एकता की भावना, जिसे हम आध्यात्मिक उन्नति कहते हैं, हमें विश्व संस्कृति या विश्व की एकता की तरफ़ ले जायगी। तब किसी भी संस्कृति के ऊँचे आदर्श या विशेषताएँ

एक संस्कृति की न होकर सारे विश्व की होंगी। किसी भी जाति के ऊँचे आदर्श और विचार समस्त मानवता के आदर्श और विचार होंगे। विश्व संस्कृति का अर्थ है -- किसी संस्कृति के ऐसे राजनीतिक आदर्श आर्थिक; सामाजिक और नैतिक आदर्श, जिनसे मानवता का जीवन सुखमय हो, विश्व में शांति की स्थापना हो, उसी को हम "विश्व-संस्कृति" कहते हैं।

जब हम लोगों में मानवता की एकता की भावना बढ़ेगी। तो हमारे विभिन्न धर्मों में आजकल की तरह वैमनस्य न होगा। ये सारे धर्म हमारे गम्य-स्थान के लिए विभिन्न मार्ग-मात्र होंगे। तब एक मुसलमान एक हिन्दू की दृष्टि में म्लेच्छ न होगा और एक हिंदू मुसलमान की नज़र में काफ़िर न होगा। एक गोरे अमेरिकन की नज़र में एक नीग्रो नीच न होगा और एक नीग्रो की नज़र में गोरे अमेरिकन शैतान न होगा। एक हरिजन ब्राह्मण की दृष्टि में चंडाल न होगा और एक ब्राह्मण हरिजन की नज़र में दानव न होगा। तभी हम इस नग्न सत्य को महसूस करेंगे कि विश्व एक है, मानवता एक है। विश्व एक वृक्ष है तो सारे देश उसकी शाखाएँ हैं। विश्व की विभिन्न जातियाँ उसी वृक्ष की विभिन्न डालियाँ हैं।

संक्षेप में, बाह्य प्रकृति की विजय से मनुष्य को तभी लाभ पहुँच सकता है जब वह अपनी आंतरिक प्रकृति का गुलाम

न रहे। बाह्य-प्रकृति पर विजय पाने पर भी वह आंतरिक-प्रकृति का या अपने मनस्तत्वों का गुलाम बना रहे तो उसका वही परिणाम होगा जो आज आफ्रिका, ब्रिटिश-गयाना, सुदूर एशिया या मध्य एशिया में हो रहा है।

दुनिया में शांति की स्थापना के लिये मनुष्य को भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी प्राप्त करनी चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति से ही हम यह अनुभव करेंगे कि मनुष्यों की असली भलाई दूसरों की भलाई में ही है। "जियो और जीने दो" की नीति से ही उसका जीवन सुखमय होगा नहीं तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" होगी और उसका परिणाम संसार का सर्वनाश होगा।

कठिन-शब्दार्थ

विस्फोट = An explosive substance, An outburst.
कठपुतली = A puppet.
नज़र आना = देख पड़ना
ज़ोर पकड़ना = खूब प्रबल होना
आर्थिक शोषण = Economic exploitation.
सितम = Violence.
झंडा उठाना = विद्रोह करना
भौतिक उन्नति = Material progress.
जिसकी लाठी उसकी भैंस = Might is right

सड़क पर

श्री पहाडी

[प्रगतिशील लेखकों में श्री पहाडी अपना अच्छा-सा नाम रखते हैं। आप उत्तम कोटि के कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। आपके दर्जनों कहानी-संग्रह एवं चार-पाँच उत्तम उपन्यास अब तक प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रारंभ में आपने रोमांटिक तथा मानव की उद्दाम वासनाओं को जगानेवाली रचनाएँ कीं, किन्तु बादमें आपने मानव के स्वस्थ जीवन एवं उनकी समस्याओं पर अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत कीं जिनसे आप उत्तम श्रेणी के कलाकारों में अपना स्थान बना सके। आपकी विचारधारा निर्माणात्मक एवं मानव जीवन की समस्याओं को परिष्कृत करनेवाली है। सामाजिक विषमताओं का आपने परिचय भी दिया तो उनके निवारण का मार्ग भी बताया। यही लेखक की सब से बड़ी विशेषताएँ हैं। 'सराय' आपका प्रसिद्ध उपन्यास है।

आप कुछ समय तक टाइम्स आफ़ इण्डिया तथा 'स्टेट्स-मैन' के विशेष प्रतिनिधि रहे। आल इंडिया रेडियो तथा अन्यान्य संस्थाओं में भी आपने काम किया। इस समय आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के रजिस्ट्रार के पद पर कार्य कर रहे हैं।

स्वस्थ बालकोपयोगी रचनाएँ करने में आप सिद्धहस्त हैं। 'जब ब्रह्मा ने धरती बनाई' लोक साहित्य संबन्धी आपकी सुन्दर पुस्तक है।]

वह गरीबों का मुहल्ला है। बिलकुल अस्वस्थ वातावरण—मैली कुचैली बस्ती! इस पर भी वहाँ एक बड़ी तादाद में लोगों को आश्रय मिला है। मजदूरी करके वे कई पीढ़ियों से वहाँ गुजर कर रहे हैं। उन लोगों का जीवन कोई मूल्यवान नहीं है। कच्ची मिट्टी की झोंपड़ियाँ हैं। उनको टूटे फूटे खपरेलों से ढंक दिया गया है। एक-एक कमरा मुश्किल से समूचे परिवारवालों को प्राप्त है। सामने बाहर दरवाजे पर औरतें राख की ढेरियाँ लगा देती हैं। उसी से बच्चे खेला करते हैं। कभी कोई बच्चा वहीं टट्टी-पेशाब भी कर देता है। पुरुष हैं, उनको देखकर डर लगता है—वे नर-कंकाल भर में सीमित हैं। श्रीहीन औरतें हैं। बच्चों की पैदाइश वहाँ अभिशाप है। आधुनिक नागरिक-शास्त्र के मुताबिक वे सभी नागरिक हैं। उनका भी समाज पर पूरा दावा है। भले ही समाज ने उनको उठाने की कोशिश नहीं की है। वे झोंपड़ियों में रहनेवाले, दुनिया की दृष्टि में नीचे दरजे के हैं। ये लोग यहीं पैदा हुये हैं और एक दिन यहीं चुपके से मर जावेंगे। इनके प्रति सहृदयता दिखाने की परवा किसी को नहीं है। वस्तुवाद से कुचले जमाने में अब आदमी का उचित आदर कब होता है! यही बात ठीक-ठीक इन लोगों पर लागू है।

तब मजदूर जीवन का सवाल साधारण बात नहीं है। दूर-दूर तक गाँवों में, लोगों के बीच यह धारणा फैल जाती है कि शहर में रोजगार मिलता है। वहाँ आमदनी के कितने ही जरिये हैं और हर एक आदमी मजे से रह सकता है तब गाँव के भीतर रहनेवाले लोग सरल-जीवन की अपेक्षा कर वहाँ चले आते हैं। शहर का कोई ज्ञान उनको नहीं होता है। वे जानते हैं कि शहर में सब कुछ मोल मिलता है। मिट्टी और लकड़ी तक के लिए पैसे चाहिए। पीने का पानी सुभीते से नहीं मिलता। सब चीज़ बिक्री पर निर्भर रहती है। तब गाँव छोड़ने के लिए पछतावा भले ही हो लाभ कुछ नहीं होता।

वे क्या करें? नौकरी तलाश करेंगे। मिलों में काम ढूँढ़ेंगे। पैसे का भाव-तोल भला वे कहाँ जानते हैं? थोड़े पैसे के लोभ से ही काम करने के लिए राजी हो जावेंगे! दैनिक जीवन में अन्दाज लगेगा कि आटा खरा नहीं—लकड़ी के बुरादे की मिलावट है। घी में भी स्वाद नहीं—फीका—फीका लगता है। खालिस सरसों का तेल तक नहीं। सड़ी गली तरकारियाँ मिलेंगी, जो जानवर तक नहीं खा सकते हैं! इसका सुधार अपनी सामर्थ्य के बाहर जानकर वे चुपचाप जीवन निभाने के लिए तुल जाते हैं।

अपनी तादाद का कोई भरोसा उनको नहीं रहता है। उनको समझाया जाता है कि फूटे भाग्य और रूठे-भगवान का कोप स्वीकार करने के अलावा और कोई चारा नहीं है। भले ही यह एक धार्मिक डकैती हो, वे अपने को अपाहिज स्वीकार कर लेने में नहीं चूकते हैं। उनको अपने व्यक्तित्व पर कुछ भरोसा नहीं रहता है। वे पैसे वाले, जो पढ़े लिखे समझदार व्यक्तियों का दिमाग तक खरीद लेने की क्षमता रखते हैं, उनके आगे उन अनपढ़ों की कैसे चल सकती है। वैसे छोटी-छोटी चींटियाँ जहरीले बिच्छू को नष्ट कर डालती हैं। यह जानकारी फैलते देर अधिक नहीं लगती है। फिर भी वह बड़ी मिलें उस बाँबी की तरह हैं, जिनको कठिन परिश्रम से दीमक बनाती हैं। किन्तु एक दिन साँप उसमें घुस आता है। वहाँ पड़ा-पड़ा दीमक को चाटना शुरू कर अपना अस्तित्व कायम करते उसे कुछ देर नहीं लगती है। कहने का मतलब सिर्फ यही है कि यहाँ की बस्ती अपना उपकार करना नहीं जानती।

उस मैले-कुचैले मोहल्ले में एक सप्ताह से जीवन आया हुआ है। फाल्गुन का महीना है। औरतें आधी-आधी रात तक ढोलक बजा-बजा कर होली गाती रहती हैं। मुरझाये लड़के-लड़कियों के चेहरों पर उत्साह दीख पड़ता है। तब ही लगता है कि उदासीनता उनके बीच से भाग गई है। वे सब निश्चिन्त और खुश हैं। उसी तरह जैसे कि भद्दी चीज में

कभी-कभी सजावट मालूम पड़ती है। सजीवता छाई हुई है। सब अपनी अकुलाहट, बेचैनी और निराशा हटाने की कोशिश में रमे हैं। बड़ी-बड़ी रात जागने के बाद मजदूर सुबह उठकर काम पर जाते हैं। औरतें दिन-भर घर के काम-काज में मशगूल रहती हैं। उसके बाद एक भारी झगड़ा शुरू होता है। कुछ लोग त्योहार मनाने के लिए ताड़ी, शराब या सुल्फे को उपयोगी मान कर इस्तेमाल करने में नहीं चूकते। इसी के साथ एक तीखा व्यंग उस समाज पर चिपक, बेचैनी फैला देता है।

फिर, उधर सोखू बीमार है। चार व्यक्तियों का परिवार। पिता-पुत्र और सास-बहू। तीसरा महीना चल रहा है। बूढ़ा मशीन साफ़ करता-करता ऊपर छत पर से नीचे फर्श पर गिर पड़ा था। टाँग टूट गई। मौत का आसरा लगाये हुये है। जीते रहने की कोई उम्मेद नहीं। अपनी हिफ़ाजत के अलावा, बार-बार घर की दशा देख, बुड्ढा चुपचाप पड़ा हुआ कराहता है। बुढ़िया कोसती है। गालियाँ देती है। बूढे के मर जाने की मनौती करती है। वह जीकर व्यर्थ घर पर अहसान लाद रहा है। उसकी क्या जरूरत है? उसकी वजह से कर्जा हो गया है। अब वह सब का सब कैसे दिया जायेगा? बुढिया पहले बहुत चिंतित रहा करती थी। मौत का भय उसे लगता था। अब सब

कुछ भूल गई है। बूढ़ा जिन्दा रहे, चाहे मर जावे; अब किसी को उसकी अधिक चिन्ता नहीं है।

रात बीत रही है। बूढ़ा बीच-बीच में खर्राटें लेता लेता चुप हो जाता है। बुढिया समझती है कि मर गया। कुछ ठीक-सा अन्दाज लगाने पास पहुँचती है। पर साँस की हल्की घरघराहट सुन, गति पाकर झुँझला, लौट आती है। हकीमजी आज मरने को कह गये हैं, तब भी बूढ़ा मरा नहीं है। न जाने कब तक मरेगा। जैसे कि मौत को ठगने की ठहराये हुये हो।

एक कोने में बहू दर्द से बीच-बीच में चीख उठती है। उसका दसवाँ महीना चल रहा है। आस-पास के घरों की औरतें समझा चुकी हैं कि एक-दो रोज में जरूर बच्चा हो जायगा। वह बुढिया उसके पास जाकर एक सफल सेविका की तरह बैठ जाती है। वह बहू छटपटाती है। पीड़ा से कभी-कभी चीखने भी लगती है।

अभी-अभी बुढिया का लड़का भारी ऊधम मचा कर गया है। उसे कुछ फिक्र नहीं है। जो कुछ वह कमाता है, अपने आवारा-दोस्तों के साथ शराब में फूक देता है। किसी काली कलूटी छोकरी से उसकी दोस्ती हो गई है। उसे ही खिला-पिला कर, उसकी टहल करता है। घर की चिन्ता उसे नहीं। दो घंटे पहले वह आया था। आकर अपने टीन के

बक्स को टटोला। बहू की चीज़ें इधर-उधर फेंक कर कुछ ढूँढ़ता रह गया। जब कुछ नहीं मिला, तो अपनी बीबी के पास खड़े हो कर गाली-गलोज करने लगा, "पैसे सब कहाँ चले गये ?"

उसके मुँह से शराब की बदबू आरही थी। कुछ जवाब न पा अशक्त बहू को एक लात मार कर वह बोला था, "सुसरी सोने का बहाना बनाये पड़ी है। कहाँ चले गये हैं सब के सब पैसे !"

बहू पीड़ा से तड़पने लगी, फिर जोर-जोर से रोने लगी। कुछ क्या बोलती ? लेकिन वह शेर बन बैठा। उसकी झोंटी पकड़ ली। उठा कर एक बारगी शैतान की तरह ज़मीन पर उसे पटक कर कहा, "सुसरी डाह करते-करते मर जावेगी। हम तो मर्द की जात ठहरे। एक नहीं कई-कई रखेल रखेंगे। तू चाहे कुएँ में कूद पड़ना।"

और सास उठ कर आई थी। समझाते हुये कहा था, "उसकी हालत ठीक नहीं है। चार दिन से चूल्हा नहीं जला है।"

तो भी वह माना नहीं। सारे घर का सत्यानाश करने की धमकी दे कर कहता हुआ चला गया था कि वह लौट कर सबका खून कर देगा। फाँसी का डर उसे नहीं ! कोई उसको रोक नहीं सकता।

मोहल्ले वाले रोज के पारिवारिक झगड़ों को उपेक्षित समझ कर कभी हस्तक्षप नहीं करते। यह सब व्यर्थ की बातें हैं।

वही बहू गहरी-गहरी साँस ले, एक बारगी फिर चिल्लाने लगती है। सास जानती है कि पीड़ा तेज हो गई है। तब अनायास ही एक सुखद स्वप्न की आकांक्षा करके दिल में चमक उठती है। उसका अपना भी अनुभव है। वह एक दिन माँ बनी थी! तो वही सारा भार उठा लेगी। नाल काटेगी। बच्चे को नहलायेगी। बुढ़िया के सारे बाल सफेद पड़ गये हैं। चेहरा बारीक गहरी रेखाओं के जाले से भर गया है। आँखें ठीक तरह नहीं देख पातीं। फिर बस कमरे में अंधियारा है। कुछ सूझता नहीं। टटोल-टटोल कर वह सब कुछ समझ रही है। कभी-कभी ढोलक व गाने का स्वर, एकाएक कमरे के अंधकार को चीर कर; वहाँ फैल जाता है। बुढ़िया सिहर उठती है। बेहोश पड़ी बहू अब चुप है। वह उसके पेट को देखने लगती है। विश्वास है कि लड़का ही होगा। उस नाती की चाहना न जाने उसे कब से है। अब जाकर साध पूरी हुई। वह किस तरह उस बच्चे को खिलावेगी। बहुत सारी बातें गढ़-गढ़ कर वह पुलक उठती है।

वह बूढ़ा अब अजीब से लम्बे-लम्बे खर्राटें भर रहा है।

वह भारी डर पैदा करता है—खरड़ड़...खरड़ड़....ख र र र ...ख्यां....ख्यां...खरड़ड़ !!!

तो क्या वह मर ही जावेगा ? बुढ़िया उठ कर, उसके पास चली जाती है। उसे पति के प्रति मोह उभर आया है। उसे हिलाती है। वह जीवित है। सांस ठीक-ठीक चल रही है। ख्याल आता, कहीं वह मर तो नहीं रहा है।

एक लंबे अरसे का बीता पिछला जीवन आगे फैल जाता है; उसमें कुछ भी अधिक नहीं है। थोड़ी-सी बातें बहुत मैली, कहीं जरा चमक नहीं। वही तंग हालत! पति के साथ कितने गौरव से वह रही थी! पहले दोनों के बीच जब झगड़ा होता था, वह बार-बार मायके जाने की धमकी देती थी। पति कितनी मिन्नतें व खुशामद नहीं करता था! जितना जो कुछ प्राप्त था, उसी से वे संतुष्ट थे। गृहस्थी सुचारू रूप से चलती रही। लड़के की पैदायश! वह गुजरे दिन झांक-झांक कर उसे परेशान करने लगे।

वह बूढे का सिर अपनी गोद पर रख कर, उसे सहलाने लगी। उस अन्धकार को छेद कर, वह उस चेहरे को पूरा-पूरा एक बार पढ़ लेना चाहती थी। पढ़ती रही—पढ़ती ही रही.......!

सोखू को एक दिन शाम को कुछ मजदूर उस झोंपड़ी में

डाल गये थे। बुढिया उसकी सेवा करते-करते अपने को भूल जाती थी। वह अच्छा नहीं हुआ। बुढिया ऊब गई। तब उसने अपना सारा ध्यान अपने लड़के और उसकी बहू पर जमा दिया। उसके बाद नाती के लिए वह चिंतित रहने लगी। बहू का एक बच्चा पहले मर चुका था। अब वह सहूलियत से पूरी-पूरी हिफ़ाजत करना चाहती थी।

उसका मन भर आया। वह बूढ़ा सच ही क्यों मर रहा है। उसने अपनी उंगली उसकी नाक पर रख दी। गरम-गरम साँस महसूस कर उसने अन्दाज लगाया कि वह अभी मर नहीं सकता है। हकीम झूठा है। वह नहीं चाहती कि बूढ़ा कभी मर जाय। कुछ दिन उसे और जिंदा रहना चाहिए! उसकी उम्र ही क्या है। मुश्किल से पचासवाँ पार किया है। लोग तो सत्तर-सत्तर साल तक जिन्दा रहा करते हैं। फिर सोचती कि उसका जिन्दा रहना व्यर्थ ही है। अपने हाथ-पांव तक का अब वह नहीं है। इस तरह दूसरों का आसरा ताकना अनुचित होगा। तो तब मौत उचित है। वह व्यर्थ अपना स्वार्थ बढ़ाने क्यों तुल गई?

वह बुढिया फिर भी रोने लगती है। रोती है—रोती है। रोने का सबब खुद नहीं जानती। बूढे के खर्राटें बन्द हो गये हैं। बहू निश्चिन्त सोयी पड़ी है। वह संभल

गई। बूढ़े का सिर गोदी से उतार, चुपचाप अलग बैठ जाती है। तभी बाहर किसी के पाँवों की आवाज़ सुनाई पड़ती है। उसने सोचा कि बेटा लौट आया। निश्चय किया कि मना-बुझा कर वह कहेगी—बेटा यह तो लगा ही रहता है। तुझे अब समझ से काम लेना चाहिए।

कुछ देर इन्तज़ार कर वह उठी। दरवाजे के पास पहुँच टट्टर हटाकर बाहर देखा। कुछ नहीं—कोई नहीं। होली है। वे ही गीत, कहीं औरतें गा रही हैं। वे गीत गलो को चीर उसके कलेजे में पैठते हैं। वह सहम जाती है। ऐसा लगता है कि मौत उस कमरे के भीतर पैठने वाली है। डर कर वह टट्टर लगा, भीतर अपने ही सहारे खड़ी न रह, धम से फर्श पर बैठ गई। कुछ सोच नहीं सकी।

—यह गरीब होना एक नैतिक अपराध है। गरीब को दुनिया में जीवित रहने का कोई हक नहीं है। कौन सी गुँजाइश है! वह धनी समाज हर तरह पैसे से खरीददारी करता है। अमीर पाप और चरित्र को नहीं मानते है। वे पैसे जमा करने के आदी हैं। पैसा उनको चाहिए। पैसे के आगे नैतिक-अनैतिक का कोई झगड़ा नहीं उठता है। कानून, धर्म और नैतिकता गरीबों के लिए है। अमीरों के जीवन में छानबीन करना एक सामाजिक अपराध है। वे स्वादिष्ट भोजन

करके कीमती शराबें पीते हैं। अमीरों को भूख और शक्ति बढ़ानेवाली दवाओं का इस्तेमाल जरूरी है। उनके जीवन में कोई दखल नहीं डाल सकता। उन पर राय देने का अधिकार हर एक को नहीं है।

इसी तरह एक और भी शहर का मोहल्ला है। वहाँ कोठियाँ हैं। लोग मोटरें रखते हैं। बँगले के चारों तरफ़ फुलवारियाँ हैं। वहीं साँझ को नौकरानियाँ स्वस्थ बच्चों को छोटी-छोटी गाड़ियों में घुमाया-फिराया करती हैं। वहाँ का वातावरण दिल को हरा कर देता है। इस तरह की विभिन्नता के बीच जीवन तीव्र गति से चलता है। बँगलों में बिजली है, रेडियो भी सुनाई देगा। सीमेंट की चौड़ी सड़कों पर मोटर तांगों की आवाज़ गूँजती रहती है। वहाँ के लोगों का भगवान खुश है। वे भाग्यशाली हैं। पर क्या यह जीवन को परखने की सही कसौटी है?

अमीरों के उस मोहल्ले में एक बड़ी पार्टी है। सैकड़ों मोटर, फिटन और ताँगे सड़क पर कतार बाँधे खड़े हैं। भारी चहल-पहल है। लगता है कि सारा जीवन-उत्साह वहाँ अहसान सा खड़ा है। हरी दूब से भरे लान पर, खूब सजावट के साथ कुर्सियाँ और मेज बिछाई हुई हैं। उन पर बैठे नागरिकों को होटल के नौकर खिला रहे हैं। खासी तकल्लुफी

बरती जा रही है। हर एक के चेहरे पर प्रसन्नता की गहरी छाप है। पर क्या सारे संसार का सुख वहीं उस मोहल्ले में चुपचाप सोया पड़ा रहेगा? उसे किसी की अवहेलना की परवाह नहीं। पिता, मां, बच्चे--हर एक की अपनी-अपनी स्वस्थता है।

और बुढ़िया तो उसी तरह बैठी हुई है, लड़का अभी तक लौट कर नहीं आया। वह मन ही मन उस रांड को गाली देती है, जिसने आज-कल उसके बच्चे के मन को फेर लिया है। वरना वह बुरा लड़का नहीं था। उसकी बहू तो लाखों में एक है—गौ की तरह सीधी। उस रांड के नाश के लिए शीतला माता की मनौती करती-करती, बताशा चढ़ाने की व्यवस्था सोच लेती है।

गरड़--गरड़—गरड़ ड़ ड़.........।

उस बूढे के गले से भारी आवाज़ आने लगी। बुढ़िया सावधान हो गई। अन्धकार में वह आवाज़, उसके दिल से बार-बार टकराती है। फिर भी वह वैसी ही बैठी रही। एकाएक वह स्वर बन्द हो गया। बुढ़िया चौंक उठी। अब वह खड़ी हुई! समझ गई कि बूढ़ा मर गया है। वह खड़ी की खड़ी ही रह गई। उसका दिल पसीज गया। आँखों से आँसू बहने लगे। एकाएक बहू का डर हो आया। मौत

के बाद, मुर्दे के चारों ओर पिशाच इकट्ठे हो जाते हैं। वह बच्चे के हक में ठीक नहीं। तब वह लाश मोहल्ले वालों को सौंप देगी। लाश का वही उपयोग है। चैतन्य हो टट्टर हटा वह बाहर निकली। एक बार खड़े हो कर उसने भीतर देखा वहाँ अन्धकार के सिवाय कुछ भी नहीं था। वह दौड़ी दौड़ी, भागने लगी......।

—सुबह लोगों ने देखा कि सोखू मरा पड़ा था। साथ ही बच्चे का रोना उस नीरव शांति में जीवन उँडेल रहा था।

जिस चौड़ी सड़क पर गरीब को ठीक तरह चलने का अधिकार नहीं, वहाँ से चार आदमी सोखू की लाश को चुपचाप ले गये। वे दुनिया की दृष्टि से अपनी निम्नता फिर भी नहीं छिपा पाते थे।

कठिन-शब्दार्थ

वस्तुवाद = Materialism
बुरादा = **लकडी चीरने पर निकलनेवाला उसका चूर्ण,** Sawdust.
सुल्फा = **गांजा चरस आदि**
मनौती करना = **कामना की पूर्ति के लिए देवता से प्रार्थना करना**
झोंटी = **सिर के बडे-बडे बालों का समूह,** Alock of long hairs.
मन भरना = **संतोष होना**

भारत की संस्कृति

सादिक अली

[श्री सादिक अली उत्तम कोटि के देशभक्त, कुशल राजनीतिज्ञ तथा अच्छे विचारक हैं। आपने विभिन्न संस्थाओं द्वारा देश तथा समाज की सेवा की है।

आप इस समय अखिल भारत राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के महामन्त्री के पद पर कार्य कर रहे हैं। आपकी दूरदर्शिता, कार्य-पटुता, जटिल समस्याओं को सरल ढंग से सुलझाने की व्यावहारिक कुशलता उल्लेखनीय हैं। आपने भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में गंभीर चिंतन एवं मनन भी किया है। उसी का परिणाम 'भारतीय संस्कृति' नामक पुस्तक है। निम्न लिखित लेख इसी पुस्तक से लिया गया है।]

भारत की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में है। भारतीय सभ्यता के आदिकाल की पुनर्रचना कल्पना तक में करना कठिन है क्योंकि एक तो हमारे पास कोई लिखित प्रमाण ही नहीं है और जो थोड़े-बहुत अभिलेख मिलते हैं उनको पढ़-कर समझ सकना भी कठिन है। मोहनजोदाडो और हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त अवशेषों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ६०० वर्ष ईसा पूर्व भी हमारे यहाँ एक ऊँचे प्रकार की सभ्यता

थी। इन दोनों स्थानों की ठोस बुनियादों से पता चलता है कि उस ज़माने के लोग शहरी जिन्दगी बसर करने के लिए पूरी तरह से संगठित थे। वे लोग मवेशी पालते थे, कपड़े बुनते थे, मिट्टी और तांबे के बर्तन बनाते थे।

हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि भारत में सब से पहले बसने वाले कौन लोग थे। इस विषय पर की जा रही खोज से बहुत अच्छी जानकारी प्राप्त हुई है और निश्चय ही और भी अधिक प्राप्त होती रहेगी।

कुछ विद्वानों का मत है कि सब से पहले शायद अफ्रीका की दिशा से नीग्रो जाति के लोग यहाँ आए थे। उनके बाद आस्टेरिक लोग आए जो कि शायद आस्ट्रेलिया की दिशा से एक टापू के बाद दूसरे टापू पर होते हुए यहाँ आ पहुँचे थे। इनके अलावा द्रविड जाति के लोग थे जिनके प्रभाव की परिधि दक्षिण से परे थी। शायद उत्तर भारत के कुछ भागों पर भी उनका अधिकार था जब कि १५०० ई० पू० के लग-भग उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी दर्रों से होते हुए आर्य जाति के लोग आए और सिन्धु नदी तथा उसकी पाँच शाखाओं के मैदान में बसने लगे। आर्य लोगों की उत्पत्ति कहाँ हुई थी, और वे विदेशी आक्रमणकारी थे या भारत के ही लोग थे ये सब बातें इतिहासकारों के सोचने-समझने की हैं। इतना निश्चित है कि आर्यों ने, जो कि परिश्रमी, प्रबल और युद्धप्रिय लोग थे, भारत में

पहले से बसने वाले लोगों को परास्त कर एक नई सभ्यता का शिलान्यास किया। वेद इसी सभ्यता की तस्वीर पेश करते हैं। यही भारतीय इतिहास का वैदिक काल है। वैदिक हिंदू संस्कृति की आत्मा वह धर्म है जिसने वेदों में उल्लिखित ऋषियों की वाणी से प्रेरणा पाई है। सबसे पुराना और सबसे महत्व-पूर्ण ऋग्वेद है। सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद बाद में आए यद्यपि वे भी समान रूप से पवित्र और पुनीत हैं। वेदों में गूढार्थ समझने वाले ऋषियों का, जिन्होंने जीवन के रहस्य पर गहराई से विचार किया था, गहन अन्तर्ज्ञान निहित है। वेदों में पुरोहितों के मार्ग-दर्शन के लिए विस्तृत संस्कार-विधि और बलिदान आदि की प्रणाली का वर्णन किया गया है। यह गूढ अन्तर्ज्ञान ही जीवन के विशिष्ट दर्शन के लिए एक आधार प्रदान करता है। यह आधार ही भारत की मुख्य सांस्कृतिक विरासत है, यद्यपि वेदोत्तर कालों में इसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन हुये हैं। वेदों में निहित संस्कार-विधि ही बाद में आकर वर्ण-व्यवस्था का आधार बनी। आर्यों ने इसी सभ्यता का धीरे-धीरे विस्तार किया और वे इसे दक्षिण तक ले गये जहाँ इसका सम्पर्क द्रविड़ लोगों की विकसित सभ्यता के साथ हुआ।

कोई भी समाज उस ऊँचे स्तर पर नहीं रह सकता जिसे उस समाज के राष्ट्र-नायक हासिल करते हैं। होता यह है कि ऊँचाइयों की ओर देखने का दृष्टिकोण अन्य और निम्नतर स्तरों

में घर कर लेता है। और उन्हें प्रभावित करता है। स्त्री पुरुषों के विशाल समूह को विभिन्न आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के साथ संघर्ष करना होता है और आवश्यक सुविधाएँ हासिल करनी होती हैं। यहाँ सब से पहले आर्यों और अनार्यों के बीच विरोध पैदा हुआ। इस विरोध से सामाजिक जीवन में विभिन्न वर्ग और जातियाँ पैदा हुयीं जो बाद में जाति-प्रथा में बदल गयीं। "वर्गों" और "जातिप्रथा" शब्दों से हमारी लोकतांत्रिक चेतना को ठेस नहीं लगनी चाहिये। विस्तृत रूप में निश्चित वर्गों सहित "जीओ और जीने दो" के आधार पर एक प्रकार का समन्वय, समझौता और स्थायी सामाजिक व्यवस्था हासिल की गई।

भारतीय संस्कृति का अर्थ

यहाँ हमें भारतीय संस्कृति का, जिस रूप में कि इसका तीन-चार हज़ार वर्षों में विकास हुआ है, मूल अर्थ समझ लेना चाहिए। भव्य हिमालय, नदियाँ, उपजाऊ मैदान और साधारण जलवायु इस देश के प्राकृतिक स्वरूप का निर्माण करते हैं। भौतिक चिन्ताओं से मुक्त होने के कारण हमारे पूर्वजों के लिए अपने-आपको जीवन के रहस्य को समझने में लगाना संभव था। जब मनुष्य अपने-आपको इस खोज में लगा देता

है तो वह तब तक नहीं रुकता जब तक कि वह सब जान नहीं लेता जो कि मनुष्य को प्राप्त सभी शक्तियों की सहायता से जाना जा सकता है। वह जीवन की सतह या प्रकृति के बाह्य स्वरूप की खोज से ही केवल संतुष्ट नहीं होता। यह सतही ज्ञान केवल उसको उलझन में डाल देता है और उसकी अज्ञानता और घनी हो जाती है। आर्य अन्वेषक ने शीघ्र ही यह जान लिया कि इन्द्रियगम्य जीवन से परे मनुष्य के अन्तर में अन्य संसार भी हैं जिन्हें वह आबाद कर सकता है, और जिनके वह इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हो सकने वाले आनन्द से कहीं अधिक आनन्द प्राप्त कर सकता है। यह उसके अन्वेषण का केवल प्रारम्भ था। ज्यों-ज्यों वह अपने अन्तर की गहराइयों में गहरा उतरता गया उसके सामने विस्मयकारी सत्य आने लगे; और इन्हीं सत्यों ने भारत की संस्कृति को एक विशिष्ट रूप दिया है। इन सत्यों की खोज ईसा, बुद्ध, योसेस, मोहम्मद के जन्म से पूर्व ही हो चुकी थी। इन सत्यों को शब्दों में बाँध दिया गया था। ये शब्द पवित्र हो गये थे, क्योंकि इन शब्दों में पवित्र, मूल्यवान और अनश्वर सत्यों को प्रस्तुत किया गया था।

इन सत्यों का मर्म मनुष्य की आत्मा है जो अणु से छोटी है और जिसमें प्रत्येक वस्तु निहित है। यदि इस आत्मा को मनुष्य जानता है तो वह प्रत्येक वस्तु को जानता है और यदि वह इसे नहीं जानता तो वह कुछ नहीं जानता।

यदि मनुष्य में सत्य, ज्ञान, और आनन्द को जानने की भूख है तो इस भूख को केवल आत्म-ज्ञान ही संतुष्ट कर सकता है। इसके अलावा संसार में केवल अज्ञानता, अपूर्णता, यातना और दुःख है। इस खोज ने ही, जो अपने प्रभाव और मन्तव्यों में दूरगामी थी, भारत की संस्कृति को एक विशेष और अनोखा स्वरूप प्रदान किया।

आत्म-चिन्तन

भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता आत्म-चिन्तन है। इस चिन्तन से प्राप्त ज्ञान ही वह आधार है जिस पर भारत की संपूर्ण सभ्यता का निर्माण किया गया है। इस चिन्तन में मूलतः हिन्दू नाम की कोई चीज़ नहीं है। क्योंकि चिन्तन का विषय सार्वजनिक मनुष्य की प्रकृति का अध्ययन करना था न कि मानवता के किसी एक भाग की प्रकृति का। इस अध्ययन के परिणामस्वरूप जो कुछ खोजा गया वह मनुष्य का धर्म—मानव धर्म था। इसी से उदारता, सार्वजनीनता और सहनशीलता का जन्म हुआ। जहाँ इनके मूल में एक ही "यथार्थ" था वहाँ सतह पर विभिन्नताएँ थीं। इस विभिन्नता को समझना, सराहना और सहन करना चाहिये। "योगवशिष्ठ" का निम्नलिखित उद्धरण कितना अर्थपूर्ण और संपन्न मन्तव्यों से परिपूर्ण है।

"विभिन्न समयों और देशों में पैदा हुये सभी विभिन्न सिद्धांतों और मार्ग एक ही "परम सत्य" की ओर ले जाते हैं, जिस प्रकार से कि विभिन्न राहें यात्रियों को विभिन्न स्थानों से एक ही नगर की ओर ले जाती हैं। "परम सत्य" के संबन्ध में अज्ञानता और विभिन्न सिद्धांतों को गलत रूप से समझने के कारण ही इन सिद्धांतों के अनुयायी एक-दूसरे से बहुत कड़वाहट के साथ झगड़ते हैं। वे अपने विशिष्ट सिद्धांत और मार्ग को श्रेष्ठ समझते हैं, जैसे कि प्रत्येक यात्री अपने ही मार्ग को, यद्यपि अज्ञानवश ही एकमात्र और श्रेष्ठ मार्ग समझता है।"

इसी कारण भारत में विभिन्न संप्रदाय शान्तिपूर्ण रूप से साथ-साथ रह सके। ये सब पृथक् संप्रदाय नहीं थे, परस्पर विरोधी संप्रदाय थे। ये संप्रदाय आंशिक सत्यों और "यथार्थ" के आंशिक दर्शनों पर निर्भर थे। समन्वय में इनके एकीकरण का प्रयत्न किया गया जो कि भारतीय विचार का एक अन्य विशिष्ट गुण है। समन्वय की परिधि से परे किसी भी चीज़ को नहीं रखा जा सकता था। यहाँ तक कि विद्रोही भी जो कुछ सोचते थे उसे भी इसमें स्थान मिल सकता था। यह समन्वय सामाजिक और राजनीतिक संगठन में भी प्राप्त किया गया था।

सांस्कृतिक समन्वय की समस्या

राजनीतिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ भारत ने अपनी संस्कृति के नए दौर में प्रवेश किया है। भारत में मौजूद विभिन्न समुदायों और वर्गों का राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों पर किस प्रकार समन्वय किया जाए यह समस्या इतिहास के प्रारम्भ और उसके विभिन्न कालों में भी थी और आज भी देश के सामने मौजूद है। भारतीय इतिहास का यह सब से बड़ा सबक है कि इस समन्वय में ही भारत ने प्रगति की और जब-जब समन्वय भंग हुआ, भारत का पतन हुआ। यदि जातिगत और संप्रदायगत वफादारियाँ पनपेंगी तो भारत पिछड़ जाएगा। ऐसी स्थिति में जो संस्कृति पनपेगी वह स्थानीय और संकीर्ण व साँप्रदायिक होगी जिसमें मानवता के लिए न कोई महान् सन्देश, नया जीवन या अन्य किसी प्रकार का महत्व होगा। भारतीय समाज में प्रांतीय, जातिगत और सांप्रदायिक शक्तियाँ सदैव रही हैं। लेकिन भारतीय इतिहास के सभी भव्य कालों में—अशोक, चन्द्रगुप्त, अकबर आदि के ज़माने में इन प्रवृत्तियों को भारत की बृहत् एकता के अन्तर्गत उनके अपने उचित स्थानों पर रख दिया गया था। यदि हमारे इतिहास के प्रारम्भ में इस एकता के राजनीतिक स्तर पर अभिव्यक्ति नहीं हुई तो यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं। भारतीय एकता की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति इतनी गहरी और सशक्त रही कि हमारे

विचारकों, कलाकारों, सन्तों और महात्माओं के लिए भारत एक जीता-जागता यथार्थ था। इस एकता ने कल्पना को जगाया और उन राजाओं और विजेताओं की महत्वाकांक्षा को उभारा जो भारत के केवल किसी एक भाग से ही संतुष्ट नहीं थे। आज की स्थिति में राजनीतिक एकता अनिवार्य है, एक ऐसी आवश्यकता है जिससे बचा नहीं जा सकता। अगर यह एकता शिथिल हो जाती हैं या समाप्त हो जाती है तो भारत-जैसी कोई चीज़ नहीं रहेगी केवल एक दर्जन या अधिक राज्यों का एक समूह रह जायगा और सब एक-दूसरे को शत्रुता और अविश्वास की दृष्टि से देखेंगे। जीवन के किसी अन्य क्षेत्र में कला, साहित्य, विज्ञान या किसी अन्य क्षेत्र में किसी भी प्रकार की कोई महानता प्राप्त न हो सकेगी। यह राजनीतिक एकता—इतिहास की हाल की घटनाओं ने अधिकाधिक साफ कर दिया है—आसानी से प्राप्त नहीं की जा सकती। देश में भावात्मक और सांस्कृतिक एकता के अभाव में अगर राजनीतिक एकता के लिए काम किया गया तो यह काम कम-ज़ोर, सतही और बनावटी होगा। इस सांस्कृतिक एकता को हासिल करने के दो तरीके हैं। एक तरीका किसी एक प्रबल संस्कृति का देश पर बलात् रोपण है। लेकिन इससे देश की अन्य संस्कृतियों का हनन होगा और अन्ततः वे समाप्त हो जायेंगी। भारत ने अपनी महानता इस तरीके से प्राप्त नहीं

की है। भारत ने सदैव विभिन्नता और अनेकता तथा विकास के विभिन्न स्तरों का सामना किया है और ऐसे सिद्धांतों की खोज करके जो सार्वजनिक हों, और इस सारी विभिन्नता को अपने में समा सकने वाले हों, एकता पाने की कोशिश की है। एक और अनेक के भेद ने भारतीय बुद्धि को व्याकुल नहीं किया। भारतीय प्रतिभा ने ऐसे सामाजिक संगठनों का भी विकास किया जिनमें विभिन्न योग्यता और विभिन्न वर्गों के लोग पारस्परिक सहयोग पा सकें। हमारे सूफियों और भक्तों ने वस्तुतः संप्रदाय और विश्वास के सभी भेदों को पार कर लिया था और ईश्वर या मनुष्य के प्रति उनमें असीम प्रेम था। हम गांधीजी की विचारधारा और शिक्षाओं में विभिन्न स्तरों पर एकता के इस दृष्टिकोण को पाते हैं। यह एकता उन सभी धर्मों के अस्तित्व को जो भारत में मौजूद हैं, भारत में प्रचलित सभी क्षेत्रीय भाषाओं को और जीवन के सभी दर्शनों को; बशर्ते कि वे हिंसा और सहनशीलता का निषेध करते हों, पूरी तरह स्वीकार करती है। वह व्यक्तिगत की स्वतन्त्रता के बहुत बड़े हामी थे, लेकिन साथ ही, वह इस स्वतन्त्रता के साथ आने वाले सामाजिक दायित्वों के प्रति भी सजग थे। वह पंचायत राज के हिमायती थे, और साथ ही भारत की एकता के प्रबल समर्थक भी। इस एकता पर होनेवाले किसी भी आघात का क्या भीषण परिणाम होगा, यह वे जानते थे।

अतएव हमें इस एकता को कमजोर करनेवाली तमाम चीज़ों से, चाहे वह आर्थिक असमानता हो, धार्मिक कट्टरता हो, जातिगत वफ़ादारी, भाषा-सम्बन्धी हठधर्मी या प्रांतीय प्रेम हो, डरना होगा और उन्हें छोड़ना होगा। ये तमाम संकुचित वफ़ादारियाँ, अगर इन्हें भारतीय एकता के सर्वोच्च विचार के मातहत नहीं किया गया तो १८वीं शताब्दी में और भारतीय इतिहास के आरम्भिक कालों में भारत की जो स्थिति थी उससे भी कहीं अधिक बड़े पैमाने पर भारत को बरबाद और विच्छिन्न कर देंगी।

भारतीय संस्कृति का रहस्य

पश्चिम की वैज्ञानिक और टेकनोलॉजी की खोजों के साथ हमारे सम्पर्क ने हमारे इच्छित समन्वय के आधार को बड़ा कर दिया है। इन्सान की बुद्धि ने ज्ञान के क्षेत्र में नई ऊँचाइयों पर विजय पाई है और अधिक ऊँचा उठने के लिए वह अथक प्रयत्न कर रहा है। नये-नये तत्वों ने भी हमारी संस्कृति की धारा में प्रवेश किया है। अब चूँकि यहाँ किसी विदेशी शक्ति का शासन नहीं है अतः हमारे सामने पश्चिम के विचार, पश्चिम के विज्ञान, साहित्य, कला का सम्पूर्ण संसार और सामाजिक और राजनीतिक संगठन के पश्चिमी उदाहरण मौजूद हैं। जिनसे हम अपनी इच्छा के अनुसार प्रेरणा ले सकते हैं; स्वीकार कर सकते हैं। आज की

परिस्थितियों ने विश्व-रंगमंच पर काम करना हमारे लिए अनिवार्य बना दिया है। अतः अपने इस दायित्व को पूरा करने के लिये हमें अपने-आपको साधन सम्पन्न बनाना है। इन साधनों में हमें भारत की उस सांस्कृतिक विरासत के सभी श्रेष्ठ और सशक्त तत्वों को अनिवार्य रूप से शामिल करना है जो कि द्रविड, आर्य, हूण, सीथियन, ग्रीक, मुसलमान और अन्त में पश्चिम के सम्मिलित प्रयास से बनी है। निस्संदेह हमारे पूर्वजों ने ही हमारे विकास की मूल दिशा निर्धारित की थी। उनके गहनतम अनुभवों में इतनी शक्ति, सत्य की इतनी गहराई थी कि भारत की सीमाओं के पार संसार के अन्य भागों में, खास तौर पर चीन, जापान, इण्डोनेशिया, मलाया, और पूर्व के अन्य देशों में यह अनुभव पहुँचा और उसने इन देशों की संस्कृति पर गहरी छाप छोड़ी। अब पश्चिम भी बुद्धि और आत्मा के जगत् में हमारी कुछ खोजों के आकर्षण को अनुभव करने लगा है। इन सब बातों से हमें अपने अन्दर सुरक्षा की एक झूठी भावना महसूस नहीं करनी चाहिए और न हमें अपने राष्ट्रीय चरित्र की कुछ कमजोरियों के प्रति आँखें ही बन्द कर लेनी चाहिये, और इन सब से अधिक हमें एक ऐसी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता कभी नहीं भूलनी चाहिये जो हमारी समग्र संस्कृति के सभी महत्वपूर्ण तत्वों को संयुक्त और एकीकृत कर सकें, गरीबों को उनकी गरीबी से उठावे, अमानवीय भेदों को

मिटावे और बुद्धि और आत्मा की महान् उपलब्धियों को सब के लिये प्राप्य बनावे।

आखिर भारत और उसकी इस दीर्घकालीन संस्कृति का क्या रहस्य है? रहस्य यह है कि भारत ने इस तथ्य को जाना है कि उसे नई और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको ढालना होगा और उन तमाम बातों को छोड़ देना होगा जो झूठी और बेजान हैं और साथ ही नये विचारों और नई खोजों के प्रभाव को ग्रहण करने के लिए मार्ग खुला रखना होगा। अगर भारत इस लचीलेपन को खो देता है तो वह अपनी शक्ति और सतत पुनरुज्जीवन की अपनी क्षमता को भी खो बैठेगा।

कठिन-शब्दार्थ

अभिलेख = Record.
खुदाई = Excavation
मवेशी = चौपाया, Cattle.
टापू = Island.
दर्रा = घाटी
विरासत = उत्तराधिकारी, पैतृक
लोकतांत्रिक = Democratic.
मन्तव्य = संकल्प
सूफी = उदार विचारवाले मुसलमानों का एक संप्रदाय या उसका अनुयायी

बशर्ते = शर्त यह
हामी = स्वीकृति
हिमायती = पक्षपाती
कट्टरता = दुराग्रह, अंध विश्वास
हठधर्मी = अपनी अनुचित बात पर ही अडे रहना
मातहत = अधीनता

मिश्र और क्रीट

पं० जवाहरलाल नेहरू

[भारत के हृदय सम्राट पं० जवाहरलाल विश्व के कतिपय राजनीतिज्ञों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। पंडितजी एक ही साथ उच्चकोटि के विचारक, सफल राजनीतिज्ञ तथा सुप्रसिद्ध वकील, अव्वल दर्जे के देशभक्त तथा चोटी के लेखक हैं।

भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई में आपका पात्र उल्लेखनीय है। आप पर भारत को गर्व है। पं० नेहरू की रचनाएँ न केवल भारत में बल्कि समस्त संसार में अत्यन्त प्रेम और आदर के साथ पढ़ी जाती हैं। आपने भारतीय संस्कृति, राजनीति तथा समाज का जो सुन्दर एवं समग्र परिचय अपनी कृतियों द्वारा कराया है, वह मनन एवं चिंतन करने योग्य है।

आपकी कृतियों में 'विश्व इतिहास की झलक', 'मेरी कहानी', 'लड़खड़ाती दुनिया', 'हिन्दुस्तान की कहानी' तथा पिता के पत्र पुत्री के नाम' उल्लेखनीय हैं। यह लेख अंतिम पुस्तक से लिया गया है। आपके भाषण भी स्थाई मूल्य रखते हैं।]

पुराने ज़माने के शहरों और गाँवों में किस तरह के लोग रहते थे? उनका कुछ हाल उनके बनाए हुए बड़े-बड़े मकानों और इमारतों से मालूम होता है। कुछ हाल उन पत्थर की

तख़्तों की लिखावट से भी मालूम होता है जो वे छोड़ गए हैं। इसके अलावा कुछ बहुत पुरानी किताबें भी हैं जिनसे उस पुराने ज़माने का बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है।

मिश्र में अब भी बड़े-बड़े मीनार और स्फ़िंक्स मौजूद हैं लकसर और दूसरी जगहों में बहुत बड़े मन्दिरों के खंडहर नजर आते हैं। तुमने इन्हें देखा नहीं है लेकिन जिस वक्त हम स्वेज़ नहर से गुजर रहे थे, वे हम से बहुत दूर न थे। लेकिन तुमने उनकी तस्वीरें देखी हैं। शायद तुम्हारे पास उनकी तसवीरों के पोस्टकार्ड मौजूद हों। स्फ़िंक्स औरत के सिर वाले शेर की मूर्ति को कहते हैं। इसका डीलडौल बहुत बड़ा है। किसी को यह नहीं मालूम कि मूर्ति क्यों बनाई गई और उसका क्या मतलब है। उस औरत के चेहरे पर एक अजीब मुर्झाई हुई मुसकुराहट है और किसी की समझ में नहीं आता कि वह क्यों मुसकुरा रही है। किसी आदमी के बारे में यह कहना कि वह स्फ़िंक्स की तरह है, उसका यह मतलब है कि तुम उसे बिलकुल नहीं समझते।

मीनार भी बहुत लम्बे चौड़े हैं। दरअसल वे मिश्र के पुराने बादशाहों के मकबरे हैं जिन्हें फ़िरऊन कहते थे। तुम्हें याद है कि तुमने लन्दन के अजायबघर में मिश्र की ममी देखी थी? ममी किसी आदमी या जानवर की लाश को कहते हैं जिसमें कुछ

ऐसे तेल और मसाले लगा दिये गए हों कि वह सड़ न सके। फ़िरऊनों की लाशों की ममी बना दी जाती थीं और तब उन बड़े-बड़े मीनारों में रख दी जाती थीं। लाशों के पास सोने और चांदी के गहने और सजावट की चीजें और खाना रख दिया जाता था। क्योंकि लोग ख़्याल करते थे कि शायद मरने के बाद उन्हें इन चीज़ों की ज़रूरत हो। दो तीन साल हुए कुछ लोगों ने इनमें से एक मीनार के अन्दर एक फ़िरऊन की लाश पाई जिसका नाम तूतन ख़ामिन था। उसके पास बहुत-सी खूबसूरत और कीमती चीज़ें रखी हुई मिलीं।

उस ज़माने में मिस्र में खेती को सींचने के लिए अच्छी-अच्छी नहरें और झीलें भी बनाई जाती थीं। मेरीडू नाम की झील खास तौर पर मशहूर थी। इससे मालूम होता है कि पुराने ज़माने के मिस्र के रहनेवाले कितने होशियार थे और उन्होंने कितनी तरक्की की थी। इन नहरों और झीलों और बड़े-बड़े मीनारों को अच्छे-अच्छे इंजीनियरों ने ही तो बनाया होगा।

कोंडिया या क्रीट एक छोटा-सा टापू है जो भूमध्य सागर में है। सईद बन्दर से वेनिस जाते वक्त हम उस टापू के पास से हो कर निकले थे। उस छोटे से टापू में उस पुराने ज़माने में बहुत अच्छी सभ्यता पाई जाती थी। नोसोज़ में एक बहुत बड़ा महल था और उसके खंडहर अब तक मौजूद

हैं। इस महल में गुसलखाने थे और पानी की नलें भी थीं जिन्हें नादान लोग नये ज़माने की निकली हुई चीज़ समझते हैं। इसके अलावा वहाँ खूबसूरत मिट्टी के बरतन, पत्थर की नक्काशी, तसवीरें और धातु और हाथीदाँत के बारीक काम भी होते थे। इस छोटे से टापू में लोग बड़ी शांति से रहते थे। और उन्होंने खूब तरक्की की थी।

तुमने मीनास बादशाह का हाल पढ़ा होगा जिसकी निस्बत मशहूर है कि जिस चीज़ को वह छू लेता था वह सोना हो जाती थी। वह खाना न खा सकता था क्योंकि खाना सोना हो जाता था और सोना तो खाने की चीज़ नहीं। उसके लालच की उसे यह सज़ा दी गई थी। यह है तो एक मज़ेदार कहानी लेकिन इससे हमें यह मालूम होता है कि सोना इतनी अच्छी और कारआमद चीज़ नहीं है जितना लोग ख़याल करते हैं। क्रीट के सब राजा मीनास कहलाते थे और यह कहानी उन्हीं में से किसी राजा की होगी।

क्रीट की एक और कथा है जो शायद तुमने सुनी हो। वहाँ मैनोटार नाम का एक देव था जो आधा आदमी और आधा बैल था। कहा जाता है कि जवान आदमी और लड़कियाँ, उसे खाने को दी जाती थीं। मैं तुमसे पहिले ही कह चुका हूँ कि मज़हब का ख़याल शुरू में किसी अनजानी चीज़ के डर से पैदा हुआ। लोगों को प्रकृति का कुछ ज्ञान न

था, न उन बातों को समझते थे जो दुनिया में बराबर होती रहती थीं। इसलिए डर के मारे वे बहुत-सी बेवकूफ़ी की बातें किया करते थे। यह बहुत मुमकिन है कि लड़के और लड़कियों का यह बलिदान किसी असली देव को न किया जाता हो बल्कि वह महज ख़याली देव हो क्योंकि मैं समझता हूँ ऐसा देव कभी हुआ ही नहीं।

उस पुराने ज़माने में सारे संसार में मर्दों और औरतों का फ़र्ज़ी देवताओं के लिये बलिदान किया जाता था। यही उनकी पूजा का ढंग था। मिस्र में लड़कियाँ नील नदी में डाल दी जाती थीं। लोगों का ख़याल था कि इससे पिता नील खुश होंगे।

बड़ी खुशी की बात है कि अब आदमियों का बलिदान नहीं किया जाता, हाँ, शायद दुनिया के किसी कोने में कभी-कभी हो जाता हो। लेकिन अब भी ईश्वर को खुश करने के लिए जानवरों का बलिदान किया जाता हैं। किसी की पूजा करने का यह कितना अनोखा ढंग है।

चीन और हिन्दुस्तान

हम लिख चुके हैं कि शुरू में मेसोपोटैमिया, मिस्र और भूमध्य सागर के छोटे से टापू क्रीट में सभ्यता शुरू हुई और फैली। उसी जमाने में चीन और हिन्दुस्तान में भी ऊँचे

दरजे की सभ्यता शुरू हुई और अपने ढंग पर फली।

दूसरी जगहों की तरह चीन में भी लोग बड़ी नदियों की घाटियों में आबाद हुये। यह उस जाति के लोग थे जिन्हें मंगोल कहते हैं। वे पीतल के खूबसूरत बर्तन बनाते थे और कुछ दिनों बाद लोहे के बर्तन भी बनाने लगे। उन्होंने नहरें और अच्छी-अच्छी इमारतें बनायीं, और लिखने का एक नया ढंग निकाला। यह लिखावट हिन्दी, उर्दू या अंगरेजी से बिलकुल नहीं मिलती। यह एक किस्म की तसवीरदार लिखावट थी। हर एक शब्द और कभी-कभी छोटे-छोटे जुमलों की भी तसवीर होती थी। पुराने ज़माने में मिस्र, क्रीट और बाबुल में भी तसवीरदार लिखावट होती थी। उसे अब चित्रलिपि कहते हैं। तुमने यह लिखावट अजायबघर की बाज किताबों में देखी होगी। मिस्र और पश्चिम के मुल्कों में यह लिखावट सिर्फ़ बहुत पुरानी इमारतों में पाई जाती है। उन मुल्कों में इस लिखावट का बहुत दिनों का रिवाज नहीं रहा लेकिन चीन में अब भी एक किस्म की तसवीरदार लिखावट मौजूद है और ऊपर से नीचे को लिखी जाती है, अंगरेजी या हिन्दी की तरह बाएँ से दाईं तरफ़ या उर्दू की तरह दाहिने से बाईं तरफ़ नहीं।

हिन्दुस्तान में बहुत सी पुराने ज़माने की इमारतों के खंडहर शायद अभी तक ज़मीन में नीचे दबे पड़े हैं। जब तक उन्हें कोई खोद न निकाले तब तक हमें उनका पता नहीं चलता। लेकिन उत्तर में बाज़ बहुत पुराने खंडहरों की खुदाई हो चुकी है। यह तो हमें मालूम ही है कि बहुत पुराने ज़माने में जब आर्य लोग हिन्दुस्तान में आये तो यहाँ द्रविड जाति के लोग रहते थे। और उनकी सभ्यता भी ऊँचे दरजे की थी। वे दूसरे मुल्क वालों के साथ व्यापार करते थे। वे अपनी बनाई हुई बहुत-सी चीज़ें मेसोपोटैमिया और मिस्र में भेजा करते थे। समुद्री रास्ते से वे ख़ास कर चावल और मसाले और साखू की इमारती लकड़ियाँ भी भेजा करते थे। कहा जाता है कि मैसोपोटैमिया के "उर" नामी शहर के बहुत से पुराने महल दक्षिणी हिन्दुस्तान से आई हुई साखू की लकड़ी के थे। यह भी कहा जाता है कि सोना, मोती, हाथीदाँत, मोर और बंदर हिन्दुस्तान से पश्चिम के मुल्कों को भेजे जाते थे। इससे मालूम होता है कि उस ज़माने में हिन्दुस्तान और दूसरे मुल्कों में बहुत व्यापार होता था। व्यापार तभी बढ़ता है जब लोग सभ्य होते हैं।

उस ज़माने में हिन्दुस्तान और चीन में छोटी-छोटी रियासतें या राज थे। इनमें से किसी मुल्क में भी एक राज न था। हर एक छोटा शहर जिसमें कुछ और गाँव और खेत होते

थे एक अलग राज होता था। ये शहरी रियासतें कहलाती हैं। उस पुराने ज़माने में भी इनमें से बहुत-सी रियासतों में पंचायती राज था। बादशाह न थे, राज का इन्तज़ाम करने के लिए चुने हुए आदमियों की एक पंचायत होती थी। फिर भी बाज रियासतों में राजा का राज था। गोकि इन शहरी रियासतों की सरकारें अलग होती थीं, लेकिन कभी-कभी वे एक दूसरे की मदद किया करती थीं। कभी—कभी एक बड़ी रियासत कई छोटी रियासतों की अगुआ बन जाती थी।

चीन में कुछ ही दिनों बाद इन छोटी-छोटी रियासतों की जगह एक बहुत बड़ा राज हो गया। इसी राज के ज़माने में चीन की बड़ी दीवार बनाई गई थी। तुमने इस बड़ी दीवार का हाल पढ़ा है। वह कितनी अजीबोग़रीब चीज़ है। वह समुद्र के किनारे से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों तक बनाई गयी थी, ताकि मंगोल जाति के लोग चीन में घुस कर न आ सकें। यह दीवार १४०० मील लम्बी, २० से ३० फीट तक ऊँची और २५ फीट चौड़ी है। थोड़ी—थोड़ी दूर पर क़िले और बुर्ज हैं। अगर ऐसी दीवार हिन्दुस्तान में बने तो वह उत्तर में लाहोर से ले कर दक्षिण में मदरास तक चली जायगी। वह दीवार अब मौजूद है। और अगर तुम चीन जाओ तो उसे देख सकती हो।

[अनुवादक :—श्री प्रेमचन्द]

कठिन-शब्दार्थ

मिश्र	=	Egypt.
तख्त	=	पटिया
डील डौल	=	सुन्दर देह निर्माण
मसाला	=	Spice.
झील	=	प्राकृतिक जलाशय
नक्काशी	=	धातु, काठ, पत्थर आदि पर खोद कर बेलबूटे आदि बनाने की कला
तसवीरदार	=	चित्र शैली
जुमला	=	वाक्य
चित्र लिपि	=	Ideograph.
रिवाज	=	प्रथा
साखू	=	The sal tree.
गोकि	=	क्योंकि
अजीबो गरीब	=	अति विचित्र
बुर्ज	=	A tower, A pinnacle.

वर्थ डे

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

[हिन्दी की कहानी लेखिकाओं में श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। आपकी कहानियों में निम्नवर्ग तथा मध्यम वर्ग के पारिवारिक जीवन का जो सजीव चित्र मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आपने भारतीय नारी की समस्याओं और परिस्थितियों का जैसा यथार्थ रूप अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है, वह असाधारण है। आपने शोषित, दलित एवं पीडित समाज का पक्ष लेकर असंख्य कहानियाँ लिखीं, वे सब काफ़ी लोकप्रिय हो चुकी हैं। आपके कहानी संग्रह "आदम खोर" का हिन्दी जगत में काफ़ी सम्मान हुआ तथा उस पर आपको पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। आप से हिन्दी कहानी साहित्य को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।]

घर सज गया था। नया, पालिश व वार्निश से चमकता सोफ़ा छोटी-सी बैठक में, जिसे मध्यमवर्गीय पढ़ा-लिखा आदमी ड्राइंग रूम कहता है, बीचोंबीच किसी धनवान अभ्यागत की भांति सुशोभित था। कोने में भारत का सबसे सस्ता रेडियो "झंकार" एक पुरानी मेज़, जिस पर नया कढ़ा हुआ लट्ठे का मेज़पोश नीचे को लटका था, पर नये खोल से ढँका

हुआ रखा था। बीच की गोल मेज़, जो किसी कबाड़ी से ख़रीदकर मरम्मत करायी गयी थी, दुसूती के कढ़े मेज़पोश से ढँकी थी और उस पर पीतल के गुलदान में कागज़ी फूलों से बना गुलदस्ता सजाया गया था। और आतिशदान पर अष्टवर्षीय अशोक के दीवाली दशहरे पर लाये खिलौने अकड़ दिखा रहे थे, यद्यपि ब्रजकिशोर को उन्हें प्राप्त करने के लिए प्यार-पुचकार ही नहीं, डाँट के साथ एक-दो चपतों का प्रयोग भी करना पड़ा था।

घर के बाहर खड़े होकर ब्रजकिशोर ने एक बार नये छींटदार पर्दे से ढँके द्वार को सन्तोष व तृप्ति की दृष्टि से निहारा। वेदनगर के दूर तक फैले क्वार्टरों में उसके क्वार्टर का पर्दा ही सब से चमकदार था। उफ़! तीन साल की दौड़-धूप के बाद वह नई दिल्ली की इस बाबू-बस्ती में मकान पा सका था। उसने कलाई-घड़ी पर दृष्टि डाली, चार बजने में दस मिनट थे। अब उसे तैयार हो जाना चाहिए। अपने नये घर पर शाम की चाय पर उसने अपने दो अपेक्षाकृत धनी मित्रों को बुलाया था। भीतर शारदा मैली धोती पहने अभी भी खटर-पटर करती सामानों की धरा-उठायी में लगी थी। तौलिया, बनयान उठाये गुसलखाने में घुसते हुये किशोर ने कहा--बाबा, तुम कभी शरीफ़ों के तौर-तरीके सीखोगी या नहीं? पचास बार

कहा कि चाय से पहले तुम ड्रेस करके तैयार रहा करो। पाँच बजे वो लोग आ जाएँगे।

शारदा जल्दी-जल्दी झाड़ू लगाने लगी।

—देखो, वह नयी सुरमई क्रेप की साड़ी पहन कर ड्राइङ्ग रूम में जाना। — किशोर गुसलखाने से चीखा।

क्रेप की साड़ी शारदा को पसन्द न हो, ऐसा तो नहीं। किन्तु घर के काम बीच में छोड़ कर (जो उसे ही निबटाने हैं, चाहे बर्तन माँझते रात के बारह ही बजे) वह साड़ी पहनना उसे खला। पति आ कर नाराज़ होंगे, इस डर से कूड़ा कोने में खिसका, ट्रंक खोल साड़ी निकालने लगी।

ब्रजकिशोर का कहना तो यह है कि शारदा चाहे बाज़ार को दो पैसे का पोदीना ही खरीदने क्यों न निकले, मेकअप के साथ जाए। माना वह सेक्रेटेरियट में बाबू न हो कर, बाटा की दूकान में सेल्समैन है, किन्तु इससे क्या अन्तर पड़ता है, तनख्वाह तो उसे भी तीन सौ के लगभग मिलती है। अंगरेज़ी उसके लिए सदा ही लोहे के चने रही, इसी कम्बख्त के कारण इन्टर तक की सीढ़ियाँ चढ़ने में उसे कई-कई विश्राम लेने पड़े, यहाँ तक कि बी. ए. तक पहुँचते-पहुँचते साहस छूट गया। अन्यथा उसका विचार है, आज़ादी मिल जाने के कारण जब आई. ए. एस. और पी. सी. एस. में कोई भी

चौबीस वर्षीय युवक ८०) खर्च के बैठ जाता है, तो क्या वह बिना कलक्टर या डिप्टी कलक्टर हुये रह जाता। अपनी अंग्रेजी की कसर उसने अपने अशोक व प्रमोद द्वारा पूरी करने की सोची है। दोनों बालकों को उसने कानवेंट में दाखिल किया है। इतने छोटे बच्चों की अट्ठाईस रुपये फ़ीस पर शारदा ने बहुत हाय-तोबा मचायी। ब्रज ने उसे डाँट दिया—तुम क्या जानो कानवेंट के लाभ! दो बरसों में बच्चे फटाफटा अंग्रेज़ी बोलने लगेंगे। ऐटीकेट और शिष्टाचार सीख जायेंगे। आजादी के बाद से देशी स्कूल एकदम ही कूड़ा हो गये हैं। इंगलिश को छठी कक्षा में शुरू करते हैं। मैं कहता हूँ, इन सबकी बुद्धि घास चरने गयी है। बिना अंग्रेज़ी के कहीं योग्यता आती है!

शारदा चुप रह गयी। बच्चों के दूध व फलों में कमी करके किसी तरह इस अट्ठाईस व्योंत बैठाया। बच्चों की ड्रेस पर इस्त्री करना भी अब दैनिक कार्यों में सम्मिलित था।

ड्राइङ्ग रूम सजाने के लिये इस सोफ़े को खरीदने में जिस कपट का आश्रय लेना पड़ा, उसे याद करके शारदा अब भी मन-ही-मन कट जाती है। ले देकर एक ही ननद है उसके। उसकी एक मात्र कन्या के विवाह में जाने और 'भात भरने" के लिए ये सौ रुपये कई महीनों में काट-कपट

बचाये थे। ब्रजकिशोर ने जब नये मकान के लिए सोफ़ा होना अत्यन्त आवश्यक बताया, तो उसे वे रुपये देने पड़ गए। फिर अन्त में ब्याह से दो दिन पहले शारदा की कठिन बीमारी का तार देकर भांजी के ब्याह में न जाने का अकाट्य बहाना ढूँढ़ा गया।

साड़ी निकालते हुए यही सब सोच कर शारदा का मन फीका हो आया।

—डैडी! डैडी! —अशोक उछलता हुआ भीतर घुसा —आपकी नेम प्लेट आ गयी! —और वह टीन का छोटा बोर्ड माँ के हाथ में थमा कर बोला—मम्मी, बोर्ड वाला पैसे माँग रहा है।

शारदा ने एक रुपया उसे दे दिया।

ब्रजकिशोर नहाकर निकला, तो वह बोली— नाम वाली तख़्ती आ गयी है।

देखूँ, कहते ब्रजकिशोर ने बोर्ड उठा कर देखा, तो सनाका हो गया, पेन्टर ने ऊपर बड़े हिन्दी अक्षरों में उसका नाम लिखा था और नीचे बारीक अंग्रेज़ी में।

—अजब उल्लू का पट्ठा है यह पेन्टर! — वह चीख पड़ा — हिन्दी की टाँग तोड़ी है! उसे एक पैसा भी नहीं

दूँगा जब तक दोबारा ठीक से न लिखेगा। लो! आज यह नेम-प्लेट भी दरवाज़े पर लगने से रह गयी। मेरे मित्रों को मकान ढूँढ़ने में कितनी परेशानी होगी! आज़ादी क्या आयी, इन छुटभइयों का दिमाग फिर गया है। आर्डर के मुताबिक काम ही नहीं करते······

शारदा पैसे दे बैठी थी। .... धीमे से कहा—जाने दो। लिखावट तो बहुत सुन्दर है। फिर अब तो हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गयी है।

—ख़ाक बन गयी है! — किशोर झल्लाया — गधे के सींग जमा दो, तो क्या घोड़ा बन जाएगा? अंग्रेजी की शान ही अलग है। साले ने बोर्ड की मिट्टी ख़राब कर दी।

बाहर कोई उसका नाम पूछ रहा था। वह जल्दी से पैन्ट पहनने कमरे में चला गया। पुकार उसके मित्र की थी। शारदा को शीघ्र तैयार होने को इंगित कर वह ड्राइंग रूम में पहुँचा।

कुशल-क्षेम के बाद चाय आने तक का समय कैसे काटा जाय।

ब्रज ने दोनों बच्चों को पुकारा—अशोक, विनोद, यहाँ आओ। देखो, ये तुम्हारे अंकिल आए हैं।

जल्दी-जल्दी दोनों को तैयार-कर शारदा ने बाहर भेजा।

—गुड इवनिंग, अंकिल---अशोक ने हाथ मिलाया। पंचवर्षीय विनोद ने भी ऐसा ही किया।

—ये मास्टर अशोक हैं, और ये मास्टर विनोद,— ब्रज ने परिचय दिया—आप दोनों कानवेंट में पढ़ते हैं। हाँ, अशोक, वो कविता तो सुनाओ, स्टारवाली।

अशोक ने "स्टार" वाली, "हैविन" वाली, और "हैप्पी बर्ड" सभी कविताएँ एक साँस में सुना दीं। विनोद ने भी "मिकी माउस" की चार पंक्तियाँ शुद्धाशुद्ध उच्चारण से सुना ही दीं।

मित्र ने बच्चों की पीठ थपथपायी—शाबाश। बहुत खूब! ······यार, तुम्हारे बच्चे तो बहुत होशियार हैं।

ब्रजकिशोर गर्व से मुस्कराया।

मुक्ति पाकर बच्चे उड़नछू हो गए।

क्रेप की साड़ी में सजी शारदा भीतर आयी। मित्र और ब्रजकिशोर कुर्सियों से उठ खड़े हुए।

कुछ देर बाद शारदा भीतर जा चाय की ट्रे उठा लायी।

किशोर ने लपक कर ट्रे थाम ली और कोमल स्वर से पूछा--डार्लिंग, सरवेन्ट कहाँ गया ?

शारदा ने सम्हलकर उत्तर दिया—कम्बख्त ने चोरी की थी, आज उसे जवाब दे दिया।

(२)

खा–पीकर लेटे, तो ब्रजकिशोर ने बात चलायी — मैं अपने मैनेजर को घर बुला कर खिलाना चाहता था। बोलो, कब बुलायें ?

शारदा मुन्नी को दूध पिला रही थी। बोली -- इसी महीने तो दीवाली पड़ेगी। उसी दिन बुला लो।

—तुम तो चोंच ही रहोगी! त्यौहार पर किसी को दावत देने का क्या मज़ा ? उस दिन तो सभी के घर पकवान बनते हैं। फिर वह इतने बड़े आदमी हैं, त्यौहार पर अपने प्रोग्राम छोड़ कर क्यों आने लगे। और भी कई मित्र हैं ? जिनके यहाँ मैं कितनी बार खा चुका हूँ। पर उस मण्डीवाले घौंसले में उन्हें बुला कर खिलाने की तबीयत नहीं हुई। वहाँ एक सोफ़ा तक तो था नहीं।

शारदा हँसी -- अरे, तो भोजन खिलाना था या सोफ़ा ? फिर अब यहाँ तो सोफ़ा भी आ गया है, किसी

दिन बुला कर खिला दो।

ब्रजकिशोर सोच में पड़ा गया। कुछ देर में बोला—ऐसे बुलाना कुछ जँचता नहीं। क्योंजी, किसी बच्चे का बर्थ डे क्यों न मनाया जाए? आज कल सभी पढ़े-लिखे लोगों में बर्थ डे मनाने का फैशन है। एक पन्थ दो काज।

—पर .... विनोद-अशोक के जन्म-दिन तो बैसाख और आसाढ़ में पढ़ते हैं,—शारदा बोली--मैं तो सदा ही उस दिन होम कराती हूँ। गीत कराती हूं। लड्डू बांटती हूं। क्या भूल गए? हां, मुन्नी इसी शनिवार को तीन की पूरी होगी। पर लड़की का जन्म-दिन मनाना ...

-- वाह! .... वाह! .... लड़की का जन्म-दिन क्यों नहीं? — किशोर लेटे से उठ कर बैठ गया — मार्डन लोग लड़कों से ज्यादा लड़कियों के बर्थ डे पर खुशी मनाते हैं। बस, बस, तो इसी शनिवार को बेबी का बर्थ डे मनेगा। पर देखो, वह लड्डू, वड्डू का बेहूदा रिवाज यहां नहीं होगा। बेकार का खर्च ....

— क्या बिना खर्चे ही के जन्म-दिन मन जायगा? चार-छे आदमी भी भोजन पर बुलाओगे, तो क्या दस पन्द्रह न उठ जायँगे? — शारदा ने प्रतिवाद किया —- फिर लड्डू क्यों

न बाटूँ ? वह जन्म-दिन क्या, जिसमें हँसी-खुशी गाना-बजाना न हो।

....होगा, तो सब-कुछ, परन्तु सभ्य तरीके पर! —ब्रज ने बताया — जैसे मिस्टर मलिक के यहाँ हुआ था, वैसा एक "हैप्पी बर्थ डे केक" बनवायेंगे, उस पर मोमबत्तियाँ जलावेंगे। हमारी बेबी उन्हें बुझायेगी। फिर उसके हाथ से केक कटवायेंगे। फिर एक शानदार टी-पार्टी देंगे, जिसमें मेरे सभी मित्र और मैनेजर साहब आयेंगे। अशोक और विनोद की कविताएँ भी होंगी। हाँ, सुनो, बेबी भी तो अब कुछ-कुछ बोलने लगी है। इन चार-पाँच दिनों में उसे भी हाथ, पाँव, आँख, नाक की अंग्रेज़ी सिखा देना, गुड इवनिंग और टाटा करना भी सिखा दो। मुझे तो दुकान से फुरसत ही नहीं होती।

शारदा ने पति की पिछली आज्ञा को आँख ओट करते हुए कहा—-मलिक तो अमीर आदमी हैं। उन्होंने तो बढ़िया पार्टी दी थी, साठ-सत्तर से क्या कम खर्च आया होगा, ऊपर भले ही हो।

ब्रजकिशोर ने सिर खुजाते हुए उत्तर दिया — इतना तो फिर लग ही जायगा। चार पौण्ड का केक भी बनवाया, तो चौदह रुपये को बनेगा। खिलौने, बिस्कुट, नमकीन, फल,

पेस्ट्री, चाय। जब करेंगे, तो शान से करेंगे कि मलिक भी दंग हो जायें।

—सो तो ठीक, पर इतने रुपए आयेंगे कहाँ से? मनोरमा को इसी महीने बुलाना है। चाहे दस ही दिन रहे पर ब्याह के बाद पहली बार आएगी, जो एक जोड़ा भी न दिया, तो सोचेगी, बुआ कितनी मक्खीचूस है। और भी सौ ख़र्चे हैं, दीवाली पड़ेगी। भइयादूज को बच्चों का टीका करेगी तो क्या दोनों की तरफ़ से पाँच-पाँच भी न दूँगी।

ब्रजकिशोर ने लपक कर पत्नी के हाथ पर हाथ मारा—तब तो निश्चय ही तुम्हारे पास चालीस पचास कहीं दबे पड़े हैं। शेष का प्रबन्ध मैं कर लूँगा। अरे, दीवाली का क्या, हर साल आती है। इस बार दस दीवे जला कर हाथ जोड़ लेना। दो रुपये की मिठाई पूजन को काफ़ी होगी।

....और मनो?...शारदा ने जिज्ञासा की।

...मैं तरकीब बताऊँ?...ब्रज की कार्य-कुशल बुद्धि जगी...कल एक पत्र मनोरमा को लिखे देता हूँ कि तुम्हारी बुआ तो बच्चों सहित आगरे चली गयी है। भाभी जी ने दिवाली करने को बुला लिया। अब तुम जब कहो, लेने आ जाऊँ। भला अकेले फूफा के पास वह क्या करने आएगी?

उपाय अचूक होने पर भी शारदा को भला न लगा। पर मलिक से भी बढ़िया पार्टी देने व मैनेजर को प्रसन्न करने की इच्छा भी कम बलवती न थी। वह सोच में पड़ गयी।

...अब डियर, तुम न-नुकुर मत करो! ...ब्रज ने उसके कपोल सहलाये...जीवन का आनन्द खाने, मौज उड़ाने में है। ये नातें-रिश्ते तो नाहक ही जान खाए जाते हैं। अपने से बचे, तभी तो किसी को देंगे। देखना, कितना लुत्फ़ आयगा पार्टी में। न दिन-भर पकवान पकाने की झंझट, न पत्तल-सकोरे फेंकने धोने की बला। खाली चाय का पानी भर उबालना पड़ेगा। पैसे लगेंगे तो क्या, सब सामान सजा सजाया आ जायगा।

...पर, ...शारदा ने टोका...इतनी मेज-कुर्सी कहाँ से आयेगी। डायनिंग रूम तो है नहीं, लोगों को चाय- पार्टी कहाँ दी जायगी?

...तुम भी बड़ी भोली हो। आधुनिक सभ्यता की यही तो खूबी है कि कम खर्च बालानाशीं! मलिक के यहाँ से बड़ी मेज़ और कुर्सियाँ मांग कर ड्राइङ्ग रूम में सब सामान लगा देंगे, सोफ़ा उस दिन बाहर मैदान में सजा देंगे, अभी बहुत सर्दियाँ थोड़े ही हैं।

ख़ैर साहब, योजना बन गयी। ब्रजकिशोर ने उसी

रात मेहमानों की सूची तैयार कर डाली। पर योजना बनाते समय कार्य जितना सहल प्रतीत होता है, उतना उसे यथार्थ के पर्दे पर उतारना नहीं।

(३)

बर्थ डे की सामग्री बनी-बनायी ही आनी थी। फिर भी शारदा घबरा रही थी। देसी तरीके के जन्म-दिन में भी तीस-चालीस उठ ही जाते थे। परन्तु देशी प्रथा के अनुसार प्रायः सभी स्त्रियाँ लड़के के टीके का रुपया-नारियल लाती थीं। इस प्रकार व्यय का अधिकांश भाग पूरा हो जाता था। बर्थ डे पर भी प्रेजेन्टस आयेंगे ही, जिनका बाज़ारू मूल्य एक-एक रुपए के टीके से अधिक ही होगा, परन्तु उन गुड़ियों, टाफी के डिब्बों और खिलौनों से मेज़ भले ही भर जाए, शारदा के बटुवे में तो एक पाई भी बढ़ने से रही।

कहने को टी-पार्टी थी। घर में केवल चाय का पानी भर उबालना था। परन्तु चाय पिलाने के सेट इकट्ठे करने में ही तोबा बोल गयी। नौकर के अभाव में वह स्वयं ही अपने परिचित क्वार्टरों में चाय का निमन्त्रण देने तथा प्लेटी-प्याले माँगने गई। काम-काज जल्दी-जल्दी निबटा, साड़ी बदल वह पहले मलिक के यहाँ पहुँची। आध पौन घण्टे की

प्रतीक्षा के बाद, मिसेज़ मलिक ड्राइंग रूम में पधारीं। इसमें उनका कोई दोष न था। कोई भी आधुनिक महिला बिना मेकअप किए किसी से भेंट नहीं कर सकती, चाहे आगन्तुक मरण-शय्या पर पड़े प्राणी के लिए तुलसी-गंगाजल लेने ही क्यों न आए। फिर दोपहर में कौन किससे मिलने जाता है। मिलने का समय संध्या चार के बाद होता है। अलसायी हुई मिसेज़ मलिक जब होंठों पर लिपस्टिक लगा, साड़ी बदल ड्राइंग रूम में मुलाकात को आयीं, तो आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई, के बाद शारदा की मांग सुनकर कुछ प्रसन्न नहीं हुईं। ड्राइंग टेबिल देने में तो कोई ख़तरा न था, परन्तु टी-सेट देना घाटे का सौदा था। मुस्कुराकर उत्तर दिया--बेबी की बर्थ डे सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। हम लोग अवश्य आयेंगे। टेबिल का क्या, आपकी चीज़ है, ले जाइये। पर टी-सेट तो कल ही मेरे भतीजे ने कमलानगर मँगा लिया है। जो आ गया, तो दे दूँगी। लेकिन आप उसके भरोसे मत रहियेगा।

फिर अन्य क्वार्टरों में किसी का सेट भांजे के यहाँ गया था, तो किसी का बहन के, किसी ने टी-सेट के नाम पर पुरानी लकड़ी की ट्रे में रख कर जो प्याले-केतली दिखाये, उनमें आधों के कुन्डे लापता थे और शेष आधों के किनारे नदारद थे।

तीन घंटे घूम-फ़िर, परेशान हो शारदा लौट आयी। शहर से तांगे पर रखाकर किराये के सेट मँगाना तै पाया। फ़िर उतने ही चम्मच भी क़िराये पर आये, कम-से कम उनसे आधे रूमाल व तौलिये भी आये, गिलास भी। हाथ धुलाने को जग और चिलमची भी ख़रीदनी पड़ी। लोटे-बाल्टी से हाथ धुलाकर हँसी थोड़ा ही करानी थी।

नौकर न होने की समस्या भी विकट थी। यह मण्डी का पुराना मोहल्ला नहीं था, जहाँ कहने मात्र से दो पसेरी कचौरियाँ उसकी एक-एक पड़ोसिन उधार देती थी। परोसने-जिमाने को, पत्तल दोने-लगाने को मोहल्ले के लड़के मुस्तैद रहते थे। यहाँ सब कुछ स्वयं ही करना था। बड़ी दौड़ धूप के बाद बर्थ डे वाली सुबह को ब्रजकिशोर एक देहाती छोकरा पकड़ लाये। पत्नी से कहा--कुछ नहीं तो मेहमानों को पानी-पान तो देगा ही।

शारदा कुछ बोली नहीं। पर यह जंगली भीखू ढंग से जग भी पकड़ सकेगा, इसमें उसे सन्देह था। पीतल के थाली लोटे किसी भी अनाड़ी महरी को सौंपे जा सकते हैं परन्तु किराये पर आये कांच के पतले गिलास व चीनी मिट्टी के प्याले उस भीखू को देते उसका मन कांपता था। फ़र्श पर दरी-चादर बिछा, पत्तल लगा देना तो कोई भी देहाती नौकर

कर लेता, परन्तु करीने से गुलदस्ते सजा, मेज़पोश बिछा, गुब्बारों, खिलौनों व झण्डियों से ड्राइंगरूम सजाना तो चतुर गृहणी अथवा सीखे-पढ़े बरे-खानसामों का ही काम था। फलस्वरूप वह दो टोकरा क्रौकरी शारदा को स्वयं ही साबुन लगा-कर धोनी पड़ी। तौलिया से पोंछने में ही भीखू ने एक दूधदानी व केटली को स्वर्ग-यात्रा करा दी। आख़िर पोंछने का काम भी शारदा ने ही संभाला। बारह बजे जब कांच-चीनी का कुल सामान धो-पोंछ कर पटरे से उठा, तो तीन घण्टे जमकर बैठने से उसकी कमर अकड़ गयी थी। फिर तीन बजे तक दौड़कर सब सामान सजाया। ड्राइंग रूम को डाइनिंग रूम में बदला, सोफ़ा, कुर्सियां मैदान में लगवायीं। बेबी रोती–बिसूरती उनकी साड़ी पकड़े साथ में घूम रही थी। नौकर के पास जाने के नाम टांगों में लिपट जाती। काम में विघ्न डालने से दो-चार चपतें भी खायीं। चुडैल यह समझना ही नहीं चाहती कि शारदा यह सब मुसीबत उसी का बर्थ डे मनाने को उठा रही है। तीन बजे से बच्चों के नहाने-धोने, कपड़े बदलने की धूम मची। बेबी की बर्थ डे फ्राक बहुत सुन्दर बनी थी। बेबी फ्राक देख प्रसन्नता से किलकारी मारकर उछली—मम्मी—फ्राक!—गले पड़ी पुरानी फ्राक उसने खींचकर फाड़ डाली।

...नहीं !...माँ ने हाथ में ली फ्राक ऊँची करके कहा....पहले गिनती तो सुनाओ, वन, टू....

बेबी का मुँह कुम्हला गया। इस वन, टू और हेड, नोज के कारण इधर कई दिन से उसे चपतें खानी पड़ रही थीं। नयी फ्राक के लालच ने विजय पाई।

वह अटक अटक कर गिनने लगी वन,....टू, थ्री, फोर, छेविन, एट....

हिश! फिर भूल गई ?—माँने आँख तरेरी—फ़ोर, फ़ाइव....

आध घण्टे कवायद के बाद बेबी को नयी फ्राक, जूते, मोज़े, रिबन प्राप्त हुए।

पाँच बजे से मेहमान आने लगे। ब्रजकिशोर और शारदा ने सबका स्वागत किया। महफ़िल जमी, तो अशोक विनोद की पुकार हुई।

——गुड इवीनिंग, अंकिल। हाउ डू यू डू ? और फिर "स्टार" वाली कविता और "हैप्पी बर्ड" वाली, "है वन" वाली, "मिकी माउस" की पंक्तियाँ, सभी कुछ।

मेहमान आश्चर्यान्वित हुए। ब्रजकिशोर गर्वित।

अब बेबी का नम्बर था। उसे एक मेज़ पर बैठाकर ब्रजकिशोर ने हाथ में टाफी लेकर दिखाई।

--बेबी टाफ़ी लोगी? लेमनड्राप्प...।

बेबी लपकी।

—न ऐसे नहीं। पहले बताओ तुम्हारी नोज़ कहाँ है। बेबी ने नाक बताई।

—शाबाश....टूथ?

बेबी ने अपने नन्हें-नन्हें दाँत दिखाये। उपस्थित जनों ने तालियाँ बजायीं।

—हेड?

बेबी ने हाथ छुआ। ब्रजकिशोर ने आँख का इशारा किया।

बेबी मुँह ताकने लगी।

—अच्छा, हैड कहाँ है?—ब्रजकिशोर ने हाथ उठाया।

बेबी ने इस बार सिर छू लिया। सब हँस पड़े। ब्रजकिशोर खिसिया गया।

शारदा ने आगे बढ़कर बात बदली---बेबी, गिनती सुनाओ।

फाँसी के तख़्ते पर खड़े हुए अपराधी की भाँति बेबी अटक-अटक--कर बोली---वन, टू, थ्री, फोर, फ़ाई, सिक, छैविन, एक, नाइन, टेन।

शारदा ने लपककर बेबी को गोद में उठा लिया, मुँह चूमा। बेबी के प्राण लौट आये। मुट्ठी में टाफ़ी भरे वह बाहर भागी।

पर अभी बर्थ डे की मुख्य रस्म तो रह ही गयी थी। शारदा ने उसे पकड़ लिया।

ब्रजकिशोर बर्थ डे वाली मेज़ उठा लाये। रंगबिरंगे फूलों की कसीदाकारी से सजा केक, जिस पर बीच-बीच में मोती टँगे थे और तीन सफ़ेद, मोटी-मोटी मोमबत्तियाँ थीं। आगत बालक व स्त्री-पुरुष आकर मेज़ के गिर्द जमा हो गये। मोमबत्तियाँ जलाई गयीं।

शारदा की गोद में चढ़ी बेबी ने किलककर हाथ जोड़े और माथे से छुआकर बोली—मम्मा पूजा।

शारदा हँसी—यह पूजा नहीं है बेटी! ले, फूँक मार-कर इन्हें बुझा तो!—उसने उसे झुकाया।

सेंक से डर बेबी ने मुँह हटाकर कहा— ओ तत्ता...

लौ बढ़ रही थी। मोमबत्तियाँ पिघल रही थीं। किशोर ने उसके हाथ में छुरी थमाकर पुचकारा——बेटी फू तो करो। फिर केक काटकर देंगे।

सभी ने बेबी को बढ़ावा दिया, फुसलाया, चुटकियाँ बजायीं।

बरात की नन्हीं दुल्हन सी बेबी इतनी प्यार-पुचकार से ऊब उठी। उसकी भोली आँखों, होठों, गोल-कपोलों में हँसी समा नहीं रही थी। फूँक मारने को तरह-तरह से मुँह बनाती, आँख चमकाती और मुँह खोल देती, ओफू...ओ...फू...

लौ तनिक-सी हिलती और फिर पूर्ववत् जलने लगती। देर हो रही थी। बेबी आ—फू के खेल में मगन थी। कभी पहली मोमबत्ती को मुँह चिढ़ाती कभी दूसरी को।

——यार, तुम्हीं बुझा दो,—हरीश ने उकताकर ब्रज को टहोका दिया——हो गयी रसम पूरी।

ब्रजकिशोर को लगा, हरीश उसका मज़ाक उड़ा रहा है।

——बेबी ! उसने आँखें तरेरीं——ज़ोर से फूँक मारो !

अपनी गोद में उसे लेकर उसने उसका मुँह केक के समीप किया।

सेंक से डर, तत्ता कह बेबी ने पिता के कन्धे में मुँह छिपा लिया।

ब्रज ने पुचकारा। थपथपाया; फिर डाँटा। बेबी ने पिता से डर कर फिर साहस किया। मोमबत्तियों का एक बड़ा भाग जल चुका था। लम्बी--लम्बी लौएँ विजेता की भाँति ऊपर उठ रही थीं।

--फू करो! फू करो--ब्रज ने बेबी का कन्धा झकझोरा--फू....

विवरण बेबी ने आँखें मींचीं, मुँह बढ़ाया और किया--फू ...ऊ-ऊ--

लौ ने लपककर उसके होंठ चूम लिये, माथे पर आयी बालों की सुनहरी लट भक से जल उठी।

झुलसे हुए होठों से चीत्कार निकली--अम्मा!--और पीड़ा से ऐंठती बेबी किशोर की गोद से छूट मेज़ पर गिर पड़ी और केक उछलकर नीचे जा पड़ा और मोमबत्तियाँ छटककर दूर पड़ीं वैसे ही जल रही थीं।

कठिन-शब्दार्थ

बैठक = A parlour.
अभ्यागत = मेहमान
काढना = To embroider.
मेज पोश = A table-cover.
खोल = मोटी चादर
कबाड़ी = One who sells broken articles.
आतिशदान = A chaping dish.
खटर पटर करदेना = चौपट करदेना
खिसकाना = धीरे-धीरे किसी ओर बढ़ाना
पोदीना = Garden mint.
लोहे के चने = अत्यंत कठिन काम
तोबा मचाना = रोते चिल्लाते रक्षा की प्रार्थना करना
ले दे करना = To dispute.
बहाना ढूँढ़ना = हीला हवाला करना
सनाका होना = पागल हो जाना
टोकना = रोकना
टीका = भेंट
बटुवा = A purse.
अलसाना = आलस्य में पड़ना
कुन्डा = मिट्टी के चौड़े मुँह का बड़ा बरतन
चिलमची = वह बरतन जिसमें हाथ मुँह धोते हैं
जिमाना = भोजन कराना
मुस्तैद रहना = तैयार रहना

अनाडी = ना समझ, नादान
करीना = ढंग, तरीका
खान सामाँ = A steward, A butler.
दूध दाना = दूध रखने का पात्र
बिसूरना = सिसक कर रोना
चुड़ैल = डायन
मोजा = Sock.
खिसियाना = शरमाना
कसीदा = Embroidery.
टँकना = To be stitched.
किलकना = हर्षध्वनि करना
बढ़ावा देना = प्रोत्साहन देना
मुँह बनाना = नाराज होना
उकताना = ऊबना
तत्ता = गरम
थपथपाना = प्यार से धीरे-धीरे ठोंकना

भक्त शिरोमणि श्री त्यागराज

श्री बालशौरि रेड्डी

[श्री बालशौरि रेड्डी आंध्र प्रांत के कडपा जिले के निवासी हैं। यद्यपि आपकी मातृभाषा तेलुगु है तथापि हिन्दी के भी सुपरिचित लेखक हैं। दोनों भाषाओं पर आप को समान अधिकार प्राप्त है। आप आजकल दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के महिला हिन्दी प्रचारक विद्यालय के प्रिन्सिपल के पद पर विराजमान हैं।

आपकी रचनाएँ हिन्दी की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रमुख रेडियो केन्द्रों से प्रायः प्रकाशित और प्रसारित होती रहती हैं। आपकी हिन्दी रचनाओं का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में भी हुआ है। "पंचामृत" "रुद्रमदेवी" "अटके आँसू" "आंध्र भारती" "आंध्र की लोक कथाएं" "नयी धरती" आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें "पंचामृत" आपकी प्रथम एवं प्रसिद्ध पुस्तक है। यह पुस्तक केन्द्रीय और उत्तर प्रदेश की सरकारों द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। इसके बाद "आंध्र भारती" गणनीय है। यह सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ भी उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। इस साहित्यिक ग्रन्थ का सृजन करके श्री रेड्डी सभी हिन्दी प्रेमियों के धन्यवाद के पात्र बने हैं। आप उत्तर और दक्षिण के बीच के वाङ्मय के आदान प्रदान का श्लाघनीय सेतु का निर्माण करने की क्षमता रखते हैं। आपसे अभी बहुत आशाएँ हैं।]

पुण्यभूमि भारत वर्ष में भक्ति की धारा अनादि काल से हृदय-क्षेत्रों को सींचती हुई अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। भक्ति की जननी भारतभूमि आध्यात्मिकता की उपासिका रहकर संसार का मार्गदर्शन करती आयी है। आज भी विश्व इसी देश की ओर देख रहा है।

आठवीं शताब्दी से लेकर अठारवीं शताब्दी तक देश में भक्ति का अधिक बोलबाला रहा है। इसी बीच में अनेक आचार्य पैदा हुए। उन लोगों ने विभिन्न प्रकार के आदर्शों को जनता के सामने रखा। इसके अतिरिक्त, हिन्दू धर्म में बहुदेवतावाद और अवतारवाद ने भक्ति के क्षेत्र में क्रांति पैदा कर दी। जिन्हें जो मार्ग भाया उसने उसी मार्ग का अनुसरण किया। कोई वैष्णव धर्म को आदर्श मानते थे, तो कोई शैव को। कोई द्वैतवाद को श्रेष्ठ सिद्ध करते तो कोई अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि को महत्वपूर्ण ठहराते।

जो हो, भारत में मुख्यतः रामावतार और कृष्णावतार को लेकर अत्यधिक चर्चा हुई। दक्षिण में कई आचार्य अपने सिद्धान्त एवं धर्म का प्रचार करते हुए उत्तर पहुँचे। वहाँ क्षेत्र तैयार था। रामानन्द, वल्लभाचार्य, शंकराचार्य आदि ने सारे उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार करके जन-मानस को परिप्लावित किया। उस समय दक्षिण में अनेक आचार्य हुए। उन आचार्यों के उपदेशामृत का पान करके कई ऐसे भक्त हो गए

जिन लोगों ने किंकर्त्तव्य विमूढावस्था में जनता का मार्गदर्शन करके प्रतिनिधित्व का भार अपने हाथ में लिया था। उन में सूर, तुलसी, जयदेव, विद्यापति, मीरा, नामदेव, तुकाराम, त्यागराज आदि मुख्य माने जाते हैं।

यहाँ हम भक्त त्यागराज की चर्चा करेंगे।

जीवनी

चोलमण्डल की राजधानी वर्तमान मद्रास प्रांत का एक ज़िला जो तमिल प्रांत में पड़ता है, तंजाऊर के निकट तिरुवालूर नामक तीर्थस्थान में भक्त रामब्रह्मम रहा करते थे। इनके दादा परदादा रायलसीमा के कर्नूल जिला 'काकर्ल' नामक गाँव के निवासी थे। यही कारण है कि इनका वंश 'काकर्ल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। रामब्रह्मम के दादा १६वीं शताब्दी में तिरुवालूर यात्रा निमित्त आये और वहीं बस गये।

रामब्रह्मम सदाचारी, विनयी, भक्त तथा विद्वान् थे। इनका विवाह शान्ता नामक नारी-रत्न से हुआ। शान्ता कोमल स्वभाव की, पतिपरायणा, पतिव्रता नारी थी। इस दंपति के दो पुत्र थे—बड़े का नाम जपेश और छोटे का नाम रामनाथ। उसी गाँव में श्री त्यागराज स्वामी का एक मन्दिर था जहाँ यह दंपति प्रतिदिन पूजा किया करता था। भक्त रामब्रह्मम अपने इष्टदेव से वर माँगा करता कि उसे एक भक्त–

शिरोमणि पुत्र का वरदान दे। समय बीतता गया। एक दिन स्वप्न में शांता ने देखा, कोई दिव्य पुरुष कह रहा है—"तुम्हारी पूजा सफल हुई, तुम्हारे गर्भ से गायक-शिरोमणि का उदय होगा।" शांता ने यह समाचार पति को दिया। वह कुछ ही दिनों में गर्भवती हुई। और सर्वजित वैशाख शुद्ध षष्ठी सोमवार के दिन पुनर्वसु नक्षत्र, कर्कट लग्न में दुपहर के समय शांता ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया।

भक्त रामब्रह्मम ने उसे श्री त्यागराज स्वामी का वरदान मान कर उस बालक का नामकरण किया। 'त्यागराज' घर पर ही बालक की शिक्षा-दीक्षा हुई। अपने अन्य भाइयों के साथ त्यागराज ने तेलुगु और संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया। परिवार के बढ़ने के साथ-साथ ग़रीबी भी बढ़ती गई। फलतः रामब्रह्मम को घर-गृहस्थी चलाना दुष्कर हो गया। अतः उसे तिरुवालूर छोड़कर तंजाऊर के समीप के पंचनदक्षेत्र (तिरुवैयार) में आना पड़ा।

त्यागराज के दोनों बड़े भाई नटखट निकले। वे माता-पिता पर भक्ति नहीं रखते थे। त्यागराज की अनन्य भक्ति, श्रद्धा एवं विनय से माता-पिता मुग्ध थे। वह सवेरे उठता, काल-कृत्यों से निवृत्त होकर घर के काम-काजों में सहायता देता, तदनन्तर पूजा-पाठ एवं भजन आदि करता। त्यागराज की भक्ति और उसका कण्ठमाधुर्य देख कर रामब्रह्मम ने तंजाऊर के

राज-दरबार के संगीत विद्वान् श्री शोण्ठि वेंकटरमणय्या के आश्रय में छोड़ दिया। त्यागराज अनतिकाल में ही संगीत शास्त्र में पारगत हुए। राग आलापन, ताल इत्यादि का अपनी १६ वर्ष की अवस्था में ही पूर्ण अभ्यास करके संगीतशास्त्र के बड़े पण्डित के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

इसी समय त्यागराज के बड़े भाई जपेश का विवाह हुआ और दूसरे भाई रामनाथ का देहात हुआ। त्यागराज का विवाह १८ वर्ष की आयु में पार्वती नामक कन्या से हुआ। उनके विवाह के कुछ ही दिनों के उपरात उनके माता पिता का स्वर्गवास हुआ। त्यागराज की सहधर्मिणी पार्वती भी उनके साथ केवल चार ही वर्ष तक साथिन बनकर रह सकी। पार्वती की मृत्यु ने त्यागराज पर वज्रप्रहार किया। फिर भी उन्होंने पार्वती की छोटी बहिन कमलाम्बा से विवाह किया। पर उनमें विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया। वे परिवार की चिन्ता नहीं किया करते थे।

जीवन से वैराग्य और आध्यात्मिक चिन्ता मे लीन त्यागराज को देखकर उनके बड़े भाई जपेश ने क्रुद्ध हो कर डांटा— "पूजा-पाठ और भजन से पेट नहीं भरता। तपस्या से परिवार सुखी नहीं बन सकता। पहले शरीर की चिन्ता करो, पेट की पूजा करो, बाद को आत्मा की चिन्ता कर

सकते हो। जिस तपस्या से पेट नहीं भर सकता उसको करना उचित नहीं। बराबर 'राम-राम' रटते राम-कोटि जपने से शरीर की हानि ही होगी। गला सूख जाएगा। कमाते नहीं बनता, तप का बहाना ढूँढ़ निकाला। यह भी कोई त्याग कहा जा सकता है?"

भाई की मूर्खता पर त्यागराज को हँसी आई। बड़ी विनय के साथ उन्होंने अपने भाई से कहा—'हे भाई! सारी सम्पत्ति का भोग आप ही कीजिए। मुझे रहने के लिए एक झोंपड़ी मात्र काफ़ी है। मेरा मूलधन रहेगी सिया-राम की मूर्ति। इस संसार रूपी भव-सागर को पार करने के लिए तम्बूरा ही मेरा एक मात्र नाव होगा। मेरी मुक्ति होगी, राम-नामामृत का पान।" जपेश ने भी पैतृक सम्पत्ति में से फटी-पुरानी छोटी चटाई, छलनी की तरह चूनेवाला छिद्रों से पूर्ण एक लोटा, दीमकों का वासस्थान ताड़ के पत्तों से बनी झोंपड़ी, तम्बूरा, पुरानी पाण्डुलिपियाँ, रुद्राक्षमाला आदि को बाँट में त्यागराज को दिया। उसी को लाखों की सम्पत्ति मानकर बड़े आनन्द के साथ त्यागराज ने स्वीकार किया। त्यागराज मधुकरी करके अपना पेट पालते थे। कुछ समय के बाद कमलाम्बा से उन्हें एक पुत्री हुई जिसका नाम सीतालक्ष्मी रखा गया।

दीक्षा—

इस प्रकार भक्त श्री त्यागराज अपने जीवन का निर्वाह करते चले जा रहे थे। एक दिन उनके यहाँ श्रीकृष्णानन्द योगी का आगमन हुआ। त्यागराज ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। उनके आतिथ्य से प्रसन्न होकर कृष्णानन्द जी ने वर माँगने को कहा। त्यागराज ने विनम्र हो कर इस भव-सागर से पार करने का तारक मन्त्रोपदेश करने की याचनाकी। योगीराज ने त्यागराज को दाशरथि (राम) का भजन करके जीवन को धन्य बनाने की सलाह दी और कहा—"जो व्यक्ति 'रामतारक मन्त्र' को ९० करोड़ बार जपेगा, वह पुनर्-जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाएगा।" इस प्रकार गुरु से उपदेश लेने की भक्तों की जो परिपाटी है उसे भी श्री त्यागराज ने निभाया और मुक्ति का मार्ग पा कर उसपर चलने का दृढ निश्चय भी किया।

त्यागराज ने श्री कृष्णानन्द योगी से उपदेश पा कर भक्त-कुलकर्म को निभाया और प्रतिदिन सवा लाख बार तारक मन्त्र जपा। ३८ वर्ष की आयु में जप पूरा करके वे कृतकृत्य हो गए। जब ९० करोड़ बार जप चुके तो महापर्व के दिवस पर एक सुमुहूर्त में विप्रवृन्द को बुला कर सब के समस्त मन्त्र-सिद्धि को 'रामचन्द्रार्पणम्' कह कर सीतापति के चरणों में समर्पण किया।

राम के दर्शन—

ठीक उसी समय बाहर से किसी के द्वार खटखटाने का शब्द हुआ। त्यागराज ने बड़ी आतुरता से जाकर द्वार खोला, तो देखते क्या हैं कि श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई लक्ष्मण और मुनि विश्वामित्र सहित यज्ञ-रक्षणार्थ प्रयाण करने वाले वेष में उपस्थित हैं। भक्त का हृदय अपने इष्टदेव को समक्ष पा कर भक्ति के आवेश में तन्मय हो कर उछल पड़ा। उनके हृदय-गह्वर से भक्ति एवं विनय की धारा बह निकली। थोड़ी देर तक अर्धनिमीलित नेत्रों से उनके भजन में तल्लीन हुए। कुछ देर के उपरांत आँखें खोल कर देखते हैं तो वहाँ रामचन्द्र जी दिखाई नहीं देते। इस पर दुःखी हो कर आँसू बहाते हुए विलाप करते हैं—"हे भगवन्, तुम तो रत्नों से जड़ित आसनों पर आराम करने वाले हो, मेरी झोंपड़ी में छोटी टूटी फूटी चटाई पर कैसे विश्राम कर सकोगे? पंच भोजन के सेवन करने वाले तुम मेरे घर के फीके दाल-भात से कैसे तृप्त होगे? तुम तो चन्द्रहारों को पहनने वाले ठहरे, मेरे यहाँ की तुलसी-माला को कैसे पहन सकोगे? तुमने दर्शन दे कर मुझे शोक-सागर में ही डुबोया, क्योंकि मैं समझता हूँ कि तुम रूठ कर चले गये हो। मैं तुम्हारा आदर-सत्कार तक नहीं कर सका।"

त्यागराज ने अपने इष्टदेव श्री रामचन्द्र की उपासना निर्लिप्त होकर की। उनकी भक्ति दास्य-भाव प्रधान थी जिसमें विनय की प्रधानता है।

त्यागराज सदा अपने इष्टदेव की सेवा में उपस्थित रहने की कामना रखते थे। इसी को लक्ष्य करके वह विनय किया करते थे—"माता कौशल्या को रामचन्द्र जी का मुँह चूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दशरथ जी को 'राम, राम' कह कर पुकारने का सुअवसर मिला। विश्वामित्र को तो राम-लक्ष्मण सदा अपनी आज्ञा पर चलते हुए देख कर मन-ही-मन प्रसन्न होते रहने का भाग्य मिला। अहिल्या को रामचन्द्र की पद-धूलि का स्पर्श करके तर जाने का महान् अवसर प्राप्त हो गया, पर मैं ही ऐसा भाग्यहीन ठहरा, मुझे कभी इस प्रकार का अवसर नहीं मिला।"

गायक—

त्यागराज केवल अपनी भक्ति और कीर्तन के लिए ही प्रसिद्ध नहीं हैं, बल्कि गायन के कारण तो वे लोकविश्रुत हैं। त्यागराज को भक्त और कवि की अपेक्षा गायक रूप में ही भारतवर्ष के लोग अधिक जानते व मानते हैं। इन्होंने स्वयं कीर्तन रचे, उनके लिए कई राग रागिनियों को जन्म दिया,

ताल, लय पर बिठा दिया। मस्त हो कर गाते थे तो श्रोता मुग्ध हो कर वाह-वाह करने लगते थे। त्यागराज की रागिनियों ने संगीत को अमर बना दिया। त्यागराज के कीर्तन 'कर्नाटक संगीत' नाम से प्रसिद्ध हैं। इस कर्नाटक संगीत को त्यागराज की देन कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। आज कर्नाटक संगीत की महत्ता की धाक केवल दक्षिण में ही नहीं, अपितु उत्तर भारत में भी जम गई है। त्यागराज की कृतियों को सुनने की अभिरुचि लोगों में दिन पर दिन बढ़ती जा रही है।

धीरे-धीरे त्यागराज की भक्ति की महिमा और अद्भुत-गान-विद्या की प्रशंसा देश भर में होने लगी। देश के कोने-कोने से लोग उनके दर्शन के लिए आने लगे। कुछ लोग तो उन्हें स्वयं नारद मुनि का अवतार मानने लगे थे। एक दिन उनके यहाँ एक अतिथि आया। वह बूढ़ा था। उसने त्यागराज का गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। त्यागराज का कीर्तन सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि आज दिन-भर मैं तुम्हारा अतिथि बन कर रहूँगा। तदनंतर स्नान आदि करके जल्दी लौटने की बात कह कर वह चला गया। फिर आया नहीं। उसकी प्रतीक्षा में त्यागराज बिना खाये लेटे रहे।

स्वप्न में उन्हें एक दिव्य मूर्ति के दर्शन हुए। उन्होंने

कहा—"हे गायक! मैं नारद हूँ। तुम्हारे आतिथ्य से बहुत प्रसन्न हो गया हूँ। तुमसे बढ़कर कोई बड़ा गायक इस संसार में नहीं होगा। मैं तुम्हें "स्वरार्णव" दे रहा हूँ। इसका अध्ययन करके "विशुद्ध शास्त्रीय संगीत का उद्धार करो।" यह कह कर नारद अंतर्धान हुए। त्यागराज चौंक कर उठ बैठे। नारद को न पा कर उनकी महिमा गाने लगे। तब से लेकर त्यागराज ने स्वरार्णव का अच्छा अध्ययन किया। उनके रहस्यों से परिचित होकर भक्ति से ओत-प्रोत शास्त्रीय नियमों से युक्त गीतों की रचना करके वे उन्हें गाया करते थे।

उनकी प्रसिद्धि से प्रभावित होकर तंजाऊर के राजा शरभोज ने उनका पुरस्कार से सम्मान करना चाहा। वे संगीत के बड़े प्रेमी थे। वे तिरुवैयार में ठहरे थे। त्यागराज का संगीत सुन कर उन्हें आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से उन्हें बुलाने के लिए उन्होंने अपने दूतों को भेजा। दूतों की बात सुनकर त्यागराज बड़ी चिन्ता में पड़ गये और वह इस प्रकार प्रार्थना करने लगे।

"हे मन! सच-सच बता। इन भौतिक सुखों की उपासना में सच्चा आनन्द है या रामचन्द्र जी के सान्निध्य की सेवा में? दही मक्खन और दूध का स्वाद अधिक रुचिकर है या दाशरथि (श्री रामचन्द्र) के ध्यान-भजन का सुधारस

स्वादिष्ट है। वासनाओं का दमन करनेवाला पवित्र गंगास्नान अधिक लाभदायक है या वासनाओं से पूर्ण कूपस्नान ? ममता, माया, बंधन आदि से युक्त मानव की स्तुति आनन्द-दायक है या श्री रामचन्द्र जी के गुण गाने में अधिक सुख है ? तू ही बता।" इस प्रकार भगवान् से प्रार्थना करके उन्होंने अपने मन को दृढ बनाया और दूतों से कहा—"मेरी जिह्वा रामनाम जपना ही जानती है, वह नर-स्तुति नहीं कर सकेगी। जिन हाथों से मैंने ईश्वर की आराधना की है उन्हीं हाथों को जोड़ कर मैं राजा को नमस्कार करना नहीं चाहता, जिन नेत्रों से मैं भगवान् विष्णु की मूर्ति को देखता हूँ उन्हीं आँखों से मैं दूसरों को कैसे देखूँ ? मैंने अपने शरीर को श्री रामचन्द्र जी की सेवा में लगा दिया है, उसी शरीर को मैं दूसरों की सेवा में नहीं लगा सकूँगा। धन, वाहन, पत्नी, सुत, बन्धु, मित्र आदि मायाजाल की मरीचिका में पड़ कर मैं राजा की भीख नहीं ले सकूँगा। अतः तुम लोग जाकर कह दो कि त्यागराज सिवा रामचन्द्र जी के दूसरों के दरबार में जाना नहीं चाहता है।"

दूतों से यह समाचार पाकर राजा बहुत प्रसन्न हुए तुरन्त त्यागराज का भाई जपेश आपे से बाहर हो गया, और त्यागराज को दोष देने लगा—"हम मानते हैं कि तुम बड़े गायक हो, लेकिन राजा के स्वयं निमंत्रित करने पर निमंत्रण को ठुकराना गर्व का परिचायक है। तुम उस निमंत्रण को स्वीकार

करते तो राजदरबार में तुम्हें गौरव प्राप्त होता और मुझे अच्छी नौकरी मिल जाती। तुमने मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया। तुम जैसे मधुकरी करके जीवन-यापन करने वाले को राजदरबार में गौरव प्राप्त करने का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता? दिन-रात उन मूर्तियों की उपासना एवं भजन में समय बिताते हो। तुम पागल तो नहीं हुए?"

इतने से ही जपेश को संतोष नहीं हुआ। एक रात में त्यागराज की उन मूर्तियों को ले जाकर कावेरी नदी में गाड़ दिया। सबेरे मूर्तियों को न पाकर त्यागराज पागल की भांति प्रलाप करने लगे। गाँव के बाहर ढूँढ़ा, कहीं नहीं मिलीं। पुनः रामचंद्र जी के दर्शन स्वप्न में हुए। उन्होंने सारी बात कही। श्री रामपंचायतन को कावेरी में पाकर त्यागराज राम के गुण गाते घर पहुँचे। इधर रामचंद्र की कृपा से जपेश का मन बदल गया। तब से वह त्यागराज के प्रति प्रेमभाव रखता हुआ उनका सहायक बन गया।

अपनी वृद्धावस्था निकट आई जान त्यागराज ने सभी तीर्थस्थानों की यात्रा का निश्चय किया। पहले तिरुवयार तथा मद्रास की यात्रा पूरी करके वे तिरुपति जाना चाहते थे। किन्तु मद्रास में सुन्दर मुदलियार नामक एक धनी भक्त ने त्यागराज को अपने गाँव कोबूर जाने के लिए निमंत्रित किया।

उस भक्त की इच्छा को वे ठुकरा नहीं सके। वहाँ कुछ समय तक रहने के उपरांत जब त्यागराज जाने लगे तो भक्त सुन्दर मुदलियार ने सोचा कि यदि त्यागराज के हाथ में वह कुछ धन देगा तो वे स्वीकार नहीं करेंगे। अतः उन्होंने त्यागराज की पालकी के एक कोने में एक हज़ार मुद्राएँ रखीं और त्यागराज के शिष्यों को सूचित कर बिदा किया। तिरुपति के रास्ते में नागलापुर के निकट रात हो गयी। लुटेरों ने यह समझ कर कि पालकी में धन होगा पत्थर फेंकना आरम्भ किया।

त्यागराज के शिष्य भय एवं चोटों के मारे परेशान हो कर चिल्लाने लगे कि अब हमारी यात्रा कैसे चलेगी? लुटेरे हमारे प्राण ले करके ही छोड़ेंगे। इस पर त्यागराज ने कहा— "हमारे पास धन नहीं है, इसलिए हमें डरने की कोई जरूरत नहीं।" शिष्यों ने सारी बातें बताईं तो त्यागराज ने उत्तर दिया— "जिस भगवान् को वे रुपये सौंपे गये हैं वे ही उनकी रक्षा करेंगे।" कहा जाता है कि धनुर्धारी राम-लक्ष्मण उनके सहायक बन कर तीरों से चोरों को भगाते सवेरे तक त्यागराज की रक्षा करते रहे। रामचन्द्र जी के दर्शन-मात्र से चोरों के हृदय बदल गये और लोगों ने त्यागराज के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगी। त्यागराज ने उन चोरों के भाग्य की सराहना कर के उन्हें गीत सुना कर प्रसन्न किया।

जब वे तिरुपति पहुँचे तो वहाँ के पुजारियों ने 'यह दर्शन करने का समय नहीं है' कह कर, श्री वेंकटेश्वर स्वामी जी के दर्शन कराने से इनकार किया और मूर्ति के सामने पर्दा गिरा दिया। भगवान् के दर्शन न होते देख कर त्यागराज चिन्तित हो कर प्रार्थना करने लगे—"हे भगवन्! मैं तुम्हारे दर्शनों के लिए बहुत दूर से आ रहा हूँ। यहाँ के पुजारी तो भेंट ले कर दर्शन कराते हैं। तुम तो करुणानिधि हो, तुम्हें भेंट दे कर मैं तुम से वर माँगना नहीं चाहता, क्योंकि मैं तुम्हारा दास हूँ। निर्धन हूँ। इसलिए पर्दा हटा कर कृपया दर्शन का सौभाग्य प्रदान कीजिए।" उनकी प्रार्थना भगवान् ने सुन ली और पर्दा उसी क्षण टूट कर नीचे आ गिरा। जब तिरुपति से कांचीपुरम पहुँचे, वहाँ भी त्यागराज ने अपनी प्रार्थना एवं भक्ति के बल पर एक भक्त को जीवन–दान दिया।

इस प्रकार की अनेक दन्तकथाएँ त्यागराज के सम्बन्ध में प्रचलित हैं।

एक दिन उनके यहाँ त्रिभुवन स्वामीनाथ अय्यर आये और उन्होंने त्यागराज से प्रार्थना की कि वे रात को उनका नाटक देखें। नाटक में प्रसंगानुसार अय्यर जी ने 'आनन्द भैरवी' राग में एक गीत गाया। त्यागराज उस गान को सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। नाटक के उपरांत अय्यर ने त्यागराज

से याचना की कि वे गान को संसार में चिर-स्थायी कर दें। और यह भी बताया कि जो गीत गाया है वह उन्हीं का बनाया हुआ है। यह भी प्रार्थना की कि भविष्य में त्यागराज 'आनन्द भैरवी' राग में गीत न बनावें ताकि उनकी प्रसिद्धि में बाधा न पहुँचे। त्यागराज ने उसकी बात मान ली और अंत तक उसका पालन भी किया।

कुछ समय के बाद त्यागराज की पत्नी कमलाम्बा बीमार पड़ी और उसका देहांत हो गया। पत्नीवियोग से त्यागराज सन्त बन कर अपने दिन काटने लगे। कुछ ही समय बाद स्वप्न में श्री रामचन्द्र जी ने त्यागराज से कहा कि "अब तुम्हारी अवधि समाप्त होने को है। तुम्हारी पूजा सफल हुई है। अतः तुम स्वर्ग के अधिकारी हो गये हो।" इससे बहुत ही आनन्दित हो कर त्यागराज शेष दिनों की प्रतीक्षा करने लगे। पराभव संवत्सर पुष्य कृष्ण पंचमी के दिन त्यागराज इस माया की काया को त्याग कर परमात्मा में जा मिले।

कठिन-शब्दार्थ

पहलू = पक्ष
बोलबाला रहना = मानमर्यादा बने रहना
ठहराना = निश्चित करना
परिप्लावित करना = भिगो देना

छलनी = A sieve
चूना = छेद में से द्रवपदार्थ का टपकना
गह्वर = बिल
चन्द्रहार = नौलखाहार
सान्निध्य = Proximity
मरीचिका = mirage
पचायतन = Idols of five gods
दन्तकथा = A legend
पराभव = The name of Hindu year
कृष्ण = अधेरा पक्ष

पडोसी

श्री आरिगपूडि

[श्री आरिगपूडि एक अच्छे कहानीकार, नाटककार एवं उपन्यासकार हैं। आपके उपन्यास काफी लोकप्रिय हो चुके हैं। उनमें कुछ पुरस्कृत भी हो चुके हैं। दक्षिण की पृष्ठभूमि पर रचित आपके उपन्यास वर्तमान समाज का सुन्दर चित्र हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति तथा समाज पर लेखक की आस्था प्रत्येक पंक्ति में देखी जा सकती है।

आप मानव की दुर्बलताओं तथा खूबियों से भलीभांति परिचित हैं। आपके पात्र पाठकों के हृदयों पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ने में समर्थ हैं।

श्री आरिगपूडि का पूरा नाम ए० रमेश चौधरी है। आप एक अच्छे पत्रकार एवं संपादक भी हैं। आप की कृतियों में धन्यभिक्षु, भूले-भटके, अपवाद, आदरणीय पतित पावनी, खरे-खोटे, नेपथ्य आदि उल्लेखनीय हैं, जिन में कुछ पुस्तकें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हुई हैं।]

—पात्र—

श्रीनिवासन

राधा

सम्बन्धम् मुदलियार

सुगुणा

श्रीनिवासन (अंगड़ाई लेते हुए) डाक आ गई क्या? कोई चिट्ठी?

राधा चिट्ठी तो आ गई है—पर आपके लिए नहीं, पड़ोसी की है--

श्रीनिवासन (ले कर पढ़ता है) देखें, सम्बन्ध मुदलियार पत्रकार श्रीनिवासन, २० शेनोय नगर, मद्रास ३० यह कोई डाकखाना है, या पुलिस स्टेशन, सब ऐरे-गैरे के लिए मेरा मकान ही क्या पता है?

राधा उन बेचारों को जानता ही कौन है—डाकिया तक नहीं शायद जानता, क्या बिगड़ गया, अगर उनकी चिट्ठी हमारे द्वारा आ गई, पड़ोसी ही तो है—फिर नये भी हैं।

श्रीनिवासन मुझे यह इल्लत पसन्द नहीं—उनसे कहना कि

डाकखाना में कहला दें कि डाकिया ठीक उन्हीं के घर डाक दे दिया करे—

राधा — मैं कैसे कहूँ ? आप ही कह देना...।

श्रीनिवासन — उनकी स्त्री से कहना।

राधा — अच्छा।

श्रीनिवासन — हूँ....हूँ....कोई कहने की ज़रूरत नहीं, इन जैसों को मुँह लगाना अच्छा नहीं--जो जहाँ है, वहीं अच्छा है, वरना ये हमारी हैसियत पर ही कालिख पोत जायेंगे।

राधा — हैं तो ये लोग कुछ ऐसे ही—परसों जब आप ट्रिची गये हुए थे—उनके आंगन में पार्टी हो रही थी, क्या चंडाल चौकड़ी थी—किसी के बाल बढ़े हुए तो किसी की दाढ़ी—कोई अंग्रेजी लिबास में था, तो किसी की कमीज़ ठीक नहीं थी, शिवजी की बरात जानो—लुच्चे लफंगे ग्यारह बजे तक शोर शराबा करते थे, उनके सिगरेट के धुएँ से नाक फटी जाती थी-- घूर-घूर कर देख रहे थे। मैं डर गई—दरवाज़े बन्द कर दिये और भगवान् का नाम जपने लगी--फिर भी....

श्रीनिवासन फिर भी....फिर भी क्या...यह शहर भी क्या है--इधर-उधर की सड़ान यहाँ आ जमा होती है--गाँव से भगाये गये तो शहर में आ डटे- तभी तो शहर में पड़ोसियों के दरम्यान परदा रहता है--

राधा मगर पड़ोसियों से बैर करना भी तो अच्छा नहीं है--अगर कभी ज़रूरत हुई तो...मदद कर ही देते हैं-- आप तो हमेशा दफ़्तर में रहते हैं घंटों काम और यहाँ बिजली भी गिर जाय तो पूछने वाले कोई नहीं--

श्रीनिवासन हाँ--याद आया--कल सेक्रेटरी साहब को न्योता दिया है—पाँच छः दोस्त आयेंगे—और जो ये हमारे पड़ोसी हैं डा० शेखर, उनको भी बुलाया है --ज़रा इन्तज़ाम करवा देना।

राधा तो क्या इस पड़ोसी को नहीं बुलाया है? मेरा मतलब संबंधम्...

श्रीनिवासन क्या ज़रूरत है—किस खेत की मूली? न कोई नाम न हैसियत, छोटा-सा मकान...मकान क्या है छोटा-सा है न कोई पूछने वाला न जाननेवाला

बड़े-बड़े अफ़सर आ रहे हैं—उनके सामने भला घोंसला इनको कैसे?

राधा फिर भी—पड़ोसी है—अच्छा न रहेगा—देखिए, जहाँ पेड़ के लिए जगह, वहाँ घास के लिए भी है—

श्रीनिवासन बातें बनानी अच्छी सीख गई हो—मैं कहता हूँ—उसकी नज़र खराब है—उस दिन जब मैं ट्रिची जा रहा था—जनाब मेरी कार ऐसे देखने लगे, जैसे ज़िन्दगी में कभी कार न देखी हो। चिन्गलपेट तक गया नहीं कि टायर बर्स्ट हो गया—एकदम नई कार, फस्टक्लास टायर—उनकी नज़र नहीं तो और क्या है?

राधा मगर हाँ—हाँ...

श्रीनिवासन अगर इतनी इच्छा हो तो पिछवाड़े में से उनके घर पकवान भिजवा देना—

राधा आप भी खूब हैं—जैसे उन्हें खाने को मिलता ही न हो—

श्रीनिवासन हो सकता है, न मिलता हो—इन जैसे पत्रकारों

को पूछता कौन है —सिवाय मोची के—(हँस कर) जिसको इनके घिसे घिसाए जूते मरम्मत के लिए मिल जाते हैं—मेरा बस चले तो कारपोरेशन वालों से कहूँगा कि इन आवारागर्द पत्रकारों पर सड़क घिसने का टैक्स लगाया जाय।

राधा रहने भी दीजिए। आप भी खूब हैं—

श्रीनिवासन ख़ैर—निवेदिता अभी तक नहीं आई, क्यों? तीन बज रहे हैं—खाना खाया कि नहीं उसने?

राधा आज उसके कान्वेण्ट में कोई फंक्शन है—खाना भिजवा दिया है—बस अब शाम को ही आएगी——।

श्रीनिवासन अच्छा, मैं आफ़िस चला। (फ़ोन की आवाज़) हूँ—देखो, देर हो गई फ़ोन भी आ गया है—ये आफ़िस वाले खाना खाकर चैन नहीं लेने देते। देखें कौन है? (फ़ोन तक जाने की आवाज़) हैलो—हूँ—सम्बन्धम् मुदलियार? हूँ ईज़ ही?, हमारा पड़ोसी—? नहीं यहाँ कोई नहीं—रांग नम्बर।

राधा — क्यों आप इतनी जल्दी खीझ जाते हैं---? फिर सरासर झूठ क्यों बोलते हैं? कोई ज़रूरी बात होगी। क्या बिगड़ जाता अगर आप उनके पास खबर भिजवा देते—?

श्रीनिवासन — यह मेरा फ़ोन है—कोई पब्लिक फ़ोन नहीं है—बेशर्म कहीं के—पता दो तो हमारा—फ़ोन नम्बर दो तो हमारा-क्या भला है—अच्छा मैं जा रहा हूँ।

दूसरा दृश्य

सुगुणा — यह लीजिए, आपकी चिट्ठी है--पड़ोसी का नौकर दे गया है—

सम्बन्धम् — अच्छा तो यहाँ रख दो—और कोई चिट्ठी नहीं आई?

सुगुणा — नहीं तो—(खिझी हुई आवाज़ में) आप इन डाकवालों से कह क्यों नहीं देते हैं कि हमारी चिट्ठी हमारे घर ही दे दिया करें। हमारा क्या पता नहीं है? छोटा घर है तो क्या हुआ, चिट्ठियाँ तो झोंपड़ियों में भी दी जाती हैं।

सम्बन्धम्　　चिट्ठियाँ तो अक्सर डाकिया हमें ही दे जाता है—उसने सोचा होगा शायद श्रीनिवासन के घर में भी कोई सम्बन्धम् मुदलियार होगा मैं भी लोगों को कभी-कभी खुद यही पता देता हूँ—क्यों तुमने बात का बतंगड़ बना रखा है—? क्या हो गया, इस छोटी-सी बात में ?

सुगुणा　　आप तो यही कहते-कहते इतनी दूर तक लाये हैं—हम भी क्या कोई नाचीज़ हैं—कि लोग हमें तब तक न जाने, जब तक हम यह न कह दें कि हम फलां के पड़ोसी हैं—? गाँव में कभी हमारे नौकर लोगों को चिट्ठियाँ देते थे। अब हमें किसी का नौकर चिट्ठियाँ दे जाता है—मेरी एक न सुनी—खुद तो आप ही मुझे भी घसीट लाये।

सम्बन्धम्　　ख़ैर, गुजरी बात को जाने दो—

सुगुणा　　क्या जाने दूँ ! परसों आपका कोई फ़ोन आया था—इन लोगों ने बुलाया तक नहीं—इन्होंने हमें समझ क्या रखा है ?

सम्बन्धम्　　उनका फ़ोन है—उनकी मर्ज़ी—इसमें इतने

छटपटाने की क्या बात है ?

सुगुणा तभी तो कह रही थी कि तुम भी घर में फ़ोन लगा लो—

सम्बन्धम् मैं फ़ोन पर खर्च नहीं कर सकता, मेरी इतनी कमाई नही है—

सुगुणा कमाई की ज़रूरत ही क्या है—हज़ारों रुपये की कमाई जो साल में बैठे-बैठे हो जाती है—आप अपनी ज़मीन जायदाद देखें तो काफ़ी है—भला इस कल फ़िसाई में क्या फ़ायदा ?

सम्बन्धम् ज़मीन जायदाद मेरी नहीं है—वह उनकी है जो उस पर ज़िन्दगी बसर करते हैं—जब मुझे हल पकड़ना तक नहीं आता तो भला ज़मीन से फ़ायदा उठाने का मेरा क्या हक़ है ? माँ बाप ने पढ़ाया-लिखाया है। मैं वही काम करूँगा–जो मैं कर सकता हूँ। मैं न खेती कर सकता हूँ -न करवा सकता हूँ। फिर ज़मीन जायदाद से मेरा क्या वास्ता ? ख़ैर--- छोड़ो ये बातें।

सुगुणा — आपको अच्छा ख़ब्त सवार हुआ है—आपका यही रवैया रहा तो हम जी चुके—कमाई तो अलग, यहाँ तो अपने गहने भी बिक रहे हैं।

सम्बन्धम् — कोई बात नहीं—(हँस कर) शायद तुम्हें गहनों की ज़रूरत नहीं! फिर मैंने गहने बेचने के लिए कब कहा? मैं साफ़ कहे देता हूँ—सुगुणा—मुझे नमकहरामी पसन्द नहीं। पसीने की कमाई में जो मज़ा है, वह किसी चीज़ में नहीं है। आज नहीं तो कल कमाई होगी।

सुगुणा — ख़ैर, आपसे तो बात करना ही गल्ती है—सोचती हूँ कि आपका दिल न दुखाऊँ-पर कम्बख़्त यह ज़बान मिर्चें उगलने ही लगती है। अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा, वैसे ही करो—जहाँ तुम भले वहाँ मैं भी भली।

सम्बन्धम् — (हँसना) ऊँह...ऊँह...ऊँह!

सुगुणा — आज कुछ लिखा कि नहीं?

सम्बन्धम् — कोशिश तो की पर कुछ लिख नहीं पा रहा हूँ-क्या लिखूँ? सोचता हूँ कि इन पड़ोसी पर ही एक कहानी लिख डालूँ।

सुगुणा — हाँ—है तो एक केरेक्टर ही? छोटी-सी फियाट क्या ख़रीदी है कि ज़मीन पर पैर नहीं टिकते सुना है किसी इन्शोरेन्स कंपनी में कोई अफ़सर है।—ऐसा ऐंठकर चलता है जैसे दुनिया में इसी को पाँच सौ रुपये वेतन मिलता है।

सम्बन्धम् — (हँसता है) हूँ....हूँ...हूँ...

सुगुणा — आप से कभी उसने बातचीत की?

सम्बन्धम् — नहीं तो—मैंने भी तो नहीं की। शहर में बिना परिचय के कोई किसी से बातचीत नहीं करता। यही सभ्यता है।

सुगुणा — सभ्यता है? सोचते होंगे—ग़रीब हैं—छोटे-से घर में रहते हैं—टूटी-फूटी बेबी आस्टिन भी नहीं है। ख़ास काम धन्धा भी कुछ नहीं।

सम्बन्धम् — तुम तो यों ही ऊटपटांग बातें कर रही हो—इन लोगों को बातचीत करने की फ़ुरसत कहाँ है?

सुगुणा — हाँ—तभी बारह-बारह बजे तक ताश चलता है—

सम्बन्धम् अच्छा तो क्या तुम्हारी बात-चीत हुई उनकी पत्नी से ?

सुगुणा तो क्या हम ही ऐसे सस्ते हैं कि उनसे बातचीत करें—गरज़ होगी, तो खुद हाथ जोड़कर आयेगी—किसी आफ़िसर की पत्नी हो तो हो—मैं भी ज़मींदारी घराने की हूँ—

सम्बन्धम् (हँसकर) फिर वही—शोखियां—छोड़ो भी—

सुगुणा हां-हां-ग़लती हो गई--मेरी भी क्या आदत है ?—जबान अक्सर यों बेलग़ाम हो जाती है—

सम्बन्धम् खैर....

सुगुणा तो आज क्या लिखोगे नहीं ?

सम्बन्धम् जी नहीं लग रहा ।

सुगुणा पर सुना है वह—किसी अच्छे घराने की है—उनके घर की नौकरानी अपनी नौकरानी से कह रही थी, मैंने सुन लिया—

सम्बन्धम् (हँसकर) यह नहीं सुना कि उनकी नौकरानी

अपने बाबू के बारे में क्या कह रही थी ?

सुगुणा तुम मज़ाक कर रहे हो——

सम्बन्धम् (हँसकर) नहीं, नहीं—

सुगुणा उसके कहने की क्या ज़रूरत—उसका हुलिया ही कह रहा था——कि दो महीनों से उसको पैसे नहीं मिले हैं। धोबी का भी यही रोना है। किसी को भी वक़्त पर पैसे नहीं मिलते! कार के इन्स्टालमेंट देते-देते ही--इनकी नानी मर जाती है——

सम्बन्धम् (हँसकर) खुद पंक्चर हो जाते हैं—हैं ?

सुगुणा आप तो मेरी ही खिल्ली उड़ा रहे हैं—

सम्बन्धम् नहीं तो !

सुगुणा महीना शुरू हुआ नहीं कि दुकानों में कर्जा लेना शुरू कर देते हैं। मज़दूरों की तरह रोज रोज लकडियाँ मँगाई जाती हैं, और तब जा कर कहीं चूल्हा जलता है——होने को पाँच सौ रुपये

तनख़्वाह है—बड़ा घर—छोटे आदमी अच्छे पड़ोसी हैं—?

सम्बन्धम् (हँसते हैं) हू हूँ....

सुगुणा पड़ोसी कहने से एक बात याद आ गई—ये जो अपने घर के सामने वाली झोंपड़ी में रहती है न मालम्मा, एक दिन आकर किवाड़ खटखटाने लगी—आप घर में न थे—मैंने पूछा, "कौन?" वह कहती है—"सामने की घरवाली पड़ोसिन" मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—आखिर इस शहर में वह भूखी-नंगी मैली-कुचैली, मेहतरानी भी हमारी पड़ोसिन है (हँसती है)

सम्बन्धम् इसमें हँसने की क्या बात है? वह पड़ोसिन ही तो है—लोगों का भी दिमाग़ भी क्या बिगड़ा हुआ है? आदमी के बड़प्पन के ये मकान, ये कारें, ये ओहदे—कभी पैमाने हो सकते हैं? मनुष्यता लोहे के बट्टों से नहीं तुलती—उसके बाट कुछ और हैं—ख़ैर सुनीला आई कि नहीं—

सुगुणा — उसको तो आये हुए काफ़ी देर हो गई है पिछवाड़े में खेल रही है—बुलाऊँ क्या ?

सम्बन्धम् — नहीं, नहीं, खेल रही है तो खेलने दो—।

तीसरा दृश्य

सुनीला — तुम्हारा नाम क्या है ?

निवेदिता — निवेदिता, तुम कहाँ पढ़ती हो ?

सुनीला — कार्पोरेशन गर्ल्स स्कूल में। और तुम ?

निवेदिता — चर्च पार्क कान्वेण्ट में। छिः छिः तुम कार्पोरेशन गर्ल्स स्कूल में पढ़ती हो !

सुनीला — क्यों–

निवेदिता — तुम्हारे पिता क्या काम करते हैं ?

सुनीला — घर में बैठे कुछ लिखते रहते हैं। और तुम्हारे...?

निवेदिता — एक बड़ी कंपनी में अफ़सर हैं....

सुनीला हूँ...तुम हमसे खेलने क्यों नहीं आतीं ?

निवेदिता पिताजी ने मना किया है...छिः छिः यह कार्पोरेशन स्कूल में पढ़ती है...?

श्रीनिवासन निवेदिता! निवेदिता! ओ निवेदिता ! इधर आओ–

सुगुणा आओ बेटी--क्यों सिसक रही हो ? तुम्हें उसके पास जाने की ज़रूरत ही क्या है ?

चौथा दृश्य

श्रीनिवासन ज़रा पान तो दो; अब फुरसत मिली है— कहो क्या बात है ?

राधा आपने देखा, कल कितनी कारें यहाँ आई हुई थीं--एक नई ब्यूक और दो टैक्सियाँ—सुना है सम्बन्धम् मुदलियार के पिता गाँव से आये थे—

श्रीनिवासन ब्यूक में।

राधा हाँ...हाँ सुना है, बड़े ज़मींदार हैं। रईस हैं। इस सम्बन्धम् मुदलियार को तो खब्त

सवार हुआ है—अपनी कमाई पर रहना चाहते हैं—घर से एक पाई नहीं लेना चाहते हैं—पिता लिवाने आये पर ये अपनी ज़िद पर अड़े रहे—

श्रीनिवासन याने ये पढ़े लिखे ज़मीन जायदाद वाले हैं- अरे यह हमें न मालूम हुआ—

राधा आप तो सिवा अपने किसी को समझते ही नहीं हैं—

श्रीनिवासन अच्छा ! तो मैं अभी आया। ज़रा उनसे मिल आयें ! आओ बेटी निवेदिता, पासवाले घर में हो आयें।

राधा तब मैं भी आती हूँ।

पाँचवाँ दृश्य

किवाड़ खटखटाने की ध्वनि

सम्बन्धम् कौन ?

श्रीनिवासन मैं—आपका पड़ोसी—श्रीनिवासन हूँ—

सम्बन्धम् आइये, तशरीफ़ रखिये। देवी जी आप भी अन्दर आइये।

श्रीनिवासन आपसे मिलने को तो बहुत दिनों से सोच रहा था। इन्शोरेन्स का काम है। फुर्सत ही नहीं मिलती। फिर आपके काम में दख़्ल भी नहीं देना चाहता...

सम्बन्धम् ख़ैर।

श्रीनिवासन आपको मद्रास कैसा लगा? अभी तो आप यहाँ नये-नये हैं—ओह सारा शहर दूर-दूर तक बसा हुआ है—कार न हो तो दिक्क़त रहती है-खैर, आपको ऐसी दिक्क़त उठाने की कोई ज़रूरत नहीं—जैसे मेरी कार वैसे आपकी। फोन-वोन की ज़रूरत हो, तो सीधे घर चले आइये,—कोई तकल्लुफ की बात नहीं—आप ही का घर है (हूँ...हूँ...हूँ....) (हँसते हैं)

सम्बन्धम् आओ बेटी, सुनीला के साथ खेलो। बड़ी मेहरबानी आपकी। शुक्रिया। सुगुणा— पान वग़ैरा लाओ---श्रीनिवासन जी आये हुए हैं—श्रीनिवासन जी अब तो चाय पानी का वक़्त

नहीं है—पान तो खाइयेगा ही—निवेदिता—आओ बेटी।

सुनीला — मैं नहीं खेलूँगी, इस लड़की से।

राधा और सुगुणा — (एक साथ) नहीं बेटी, जिद नहीं किया करते।

कठिन-शब्दार्थ

ऐरा-गैरा = अपरिचित
इल्लत = झंझट
रवैया = चालचलन
घराना = वंश
हुलिया = रूप